दुनिया के मजदूरो एक हो!

बिगुल

मासिक बुलेटिन • अंक 9
जनवरी 1997 • दो रुपये • आठ पृष्ठ

नववर्ष पर विशेष लेख

निजीकरण-कुचक्र और ट्रेड यूनियन आंदोलन की बुनियादी समस्याएं

• ओ.पी. सिन्हा

जब हम सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों को तरह-तरह के तिकड़मों के जरिए बीमार साबित करने, उनमें से पूंजी निकालने और उन्हें निजी क्षेत्र में सौंपने की वर्तमान सरकारी पर्दा डालते हैं और अंततोगत्वा पूंजीपति वर्ग को ही मुनाफा निचोड़ने में मदद करते हैं तथा खुद भी बड़े पैमाने पर मज़दूरों के अतिरिक्त श्रम के दोहन का काम करते हैं। यानी पूरे पूंजीपति लूट को सरकारी देख-रेख में चलाने के लिए हुई थी। राजनीतिक आज़ादी मिलने के बाद भारतीय पूंजीपति वर्ग ने पूरे पूंजीवादी लूट तंत्र के निर्माण के लिए जरूरी सड़क, बिजली, रेल,

निजीकरण के खिलाफ बंटी हुई लड़ाई नहीं जीती जा सकती नई आर्थिक नीति किसी एक कारखाने में उलटी नहीं जा सकती

नीति की आलोचना करते हैं तो सबसे पहले यह स्पष्ट कर देना ज़रूरी है कि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग 'समाजवादी उपक्रम' या 'जनता की सम्पत्ति' नहीं होते।

यह भी एक तरह का पूंजीवाद ही है जिसे उन्नीसवीं सदी के अंत में ही राजकीय पूंजीवाद कहा गया था। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों पर जिस राज्यसत्ता का स्वामित्व होता है, वह संसदीय जनतंत्र, पंचायती राज, सार्विक मताधिकार आदि तरह-तरह के मुखौटों के बावजूद यदि पूंजीपति वर्ग की राज्यसत्ता है तो जाहिरा तौर पर सार्वजनिक क्षेत्र के सभी उद्योगों पर भी स्वामित्व (राज्यसत्ता के जरिए) पूंजीपति वर्ग का ही होता है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली के विकास की एक खास अवस्था में पैदा हुए। ये उत्पादन के साधनों के पूंजीवादी निजी स्वामित्व की प्रकृति पर वर्ग के व्यापक हितों की हिफाजत के लिए राज्य स्वयं ही पूंजीपति वर्ग की भूमिका भी निभाने लगता है। सार्वजनिक क्षेत्र में निचोड़े गये अधिशेष (सरप्लस) का एक बड़ा हिस्सा राज्यसता का काम-काज चलाने वाली शीर्षस्थ नौकरशाही और नेताशाही के उपभोग, विलासिता और वैध-अवैध लूट के खाते में जाता है तथा दूसरा बड़ा हिस्सा बैंकों - शेयर बाजारों आदि के जरिए वित्तीय क्षेत्र और औद्योगिक क्षेत्र में निवेश होकर पूंजीवादी घरानों के साम्राज्य-विस्तार में सहायक बन जाता है। इस नौकरशाही का ऊपरी हिस्सा या नीति-निर्धारक हिस्सा ही आज का नये किस्म का नौकरशाह पूंजीपति वर्ग है।

भारत में सार्वजनिक क्षेत्र-निर्माण के दौर से विघटन के दौर तक भारत में भी सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की स्थापना जनहित या श्रमिक हित में नहीं हुई थी, बल्कि इसके उलट पूंजीवादी डाक-तार, लोहा आदि बुनियादी एवं अवरचनागत उद्योगों के विकास के लिए समाजवादी मुखौटे वाले सार्वजनिक क्षेत्र का कार्यक्रम अपनाया और सरकार के जरिए जनता के खून-पसीने की कमाई निचोड़कर उससे इन क्षेत्रों में पूंजी-निवेश किया, क्योंकि इन क्षेत्रों में निवेश के लिए आवश्यक पूंजी उसके पास थी ही नहीं। शुरू से ही यह स्पष्ट था कि इन क्षेत्रों के एक हद तक विकास और औद्योगिक उपभोक्ता सामानों के लिए ठोस बाज़ार के निर्माण के साथ ही अर्थव्यवस्था की बागडोर निजी पूंजी (प्राइवेट सेक्टर) को सौंप दी जायेगी, पब्लिक सेक्टर का दायरा सिकोड़ दिया जायेगा तथा राज्यसत्ता की भूमिका मुनाफा निचोड़ने की मशीनरी की हिफाजत तक सीमित कर दी जायेगी।

(पेज 4 पर जारी)

बनारस का डी.एल.डब्ल्यू. कारखाना निजी पूंजीपतियों के हाथों औने-पौने बेचने की साजिश

वाराणसी। डी.एल. डब्ल्यू. के आला अफसरान सरकार और साम्राज्यवादी संस्थाओं के साथ सांठ-गांठ करके गुपचुप तरीके से कारखाने को निजी हाथों में सौंपने की साजिश में लगे हुए हैं। इस भेद के बारे में कारखाने के बाहर की दुनिया एकदम बेखबर हैं यह जानकारी वहां काम करने वाले कुछ जागरूक मजदूरों ने 'बिगुल' बेचने वाले साथियों को बतायी।

मजदूर साथियों ने बताया कि अधिकारीगण इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि यदि कारखाने के निजीकरण की खुल्लमखुल्ला कोशिश की गयी तो मजदूर इसका जमकर विरोध करेंगे। इसलिए वे धीरे-धीरे कारखाने को ऐसी हाल में पहुंचा देना चाहते हैं जिससे मजदूर खुद इस बात को मानने लगें कि कारखाने के निजीकरण के अलावा कोई दूसरा चारा नहीं है।

कारखाने के ऊपर के बड़े अधिकारी सरकार की मर्जी से यह काम कर रहे हैं। एक अन्तरराष्ट्रीय संस्था बड़ी चालाकी से इस काम में पूरा सहयोग कर रही है।

इस गहरी साजिश का भण्डाफोड़ करते हुए साथियों ने बताया कि अन्तरराष्ट्रीय बाजार में मालों की क्वालिटी की जांच-परख करने वाली एक संस्था है 'इण्टरनेशनल स्टैण्डर्ड आर्गनाइजेशन', जिसे आम तौर पर आई.एस.ओ. - 9000 के नाम से जाना जाता है। इस संस्था के काम करने का तरीका इतना महीन है कि इसकी असली मंशा का लोगों को अता-पता नहीं चलता।

अन्तरराष्ट्रीय बाजार में माल सप्लाई करने वाले किसी भी सरकारी गैरसरकारी कारखाने के लिए इस संस्था से क्वालिटी का प्रमाण पत्र लेना आवश्यक है। चूंकि डी.एल.डब्ल्यू के इंजनों की विदेशों में भी मांग है इसलिए स्वाभाविक रूप से ISO-9000 से क्वालिटी प्रमाण पत्र के बिना विदेशों में इंजन नहीं बेचा जा सकता। वैसे भी भूमण्डलीकरण के इस जमाने में हर देश के लिए इस संस्था का सदस्य बनना अनिवार्य है। सभी सदस्य देशों के संवैधानिक प्रमुख अपने-अपने देशों में इस संस्था के अध्यक्ष होते हैं। इस लिहाज से भारत का राष्ट्रपति अपने देश में इस संस्था का अध्यक्ष है।

अब देखिए, इस संस्था के काम करने का तरीका कितना बारीक है। किसी उत्पाद की क्वालिटी का प्रमाण पत्र देने के लिए यह संस्था माल कैसा बना है इसकी जांच-परख करने से ज्यादा आवश्यक समझती है यह देखना कि माल किस तरह से बनाया गया है। दूसरे शब्दों में, यह उत्पाद की गुणवत्ता देखने के बजाय उत्पादन की प्रक्रिया पर निगरानी रखना अपना असली कार्य मानती है। उदाहरण के तौर पर संस्था के कर्मचारी यह निरीक्षण करते हैं कि मजदूरों के काम करने की दशाएं क्या हैं? मजदूरों के वर्कशाप स्वास्थ्य के लिहाज से ठीक ढंग से बने हैं या नहीं? मजदूरों के ऊपर वर्कलोड बहुत ज्यादा तो नहीं है, उन्हें पर्याप्त आराम मिल पाता है या नहीं, मजदूरों और ऊपर के अधिकारियों के बीच के रिश्ते जनतांत्रिक यानी बराबरी के और सम्मानजनक हैं या नहीं?

ऊपर-ऊपर से देखने पर यह सब कुछ कितना मानवीय लगता है और किसी को इस पर भला क्या एतराज हो सकता है? लेकिन, दरअसल, इस मानवीय दिखने वाले मुखौटे के पीछे इस संस्था का असली क्रूर चेहरा छिपा हुआ है। दुनिया के मजदूरों की बढ़ती चेतना के नाते साम्राज्यवादियों को इस नये हथियार को गढ़ना पड़ा है। दरअसल, होता यह है कि यदि किसी कारखाने में मजदूरों के काम करने की दशाएं संस्था द्वारा निर्धारित मानकों के हिसाब से "मानवीय" नहीं हैं, तो संस्था उस कारखाने के माल की अन्तरराष्ट्रीय बाजार में बिक्री पर रोक लगाने की सिफारिश कर देती है। नतीजा यह कि कारखाना धीरे-धीरे घाटा दिखाने लगने लगता है, और तालाबंदी की नौबत आ जाती है। अगली मंजिल में इस 'बीमार' कारखाने को निजी पूंजीपतियों के हाथों में औने-पौने दामों पर बेच दिया जायेगा। और फिर भारी संख्या में मजदूर छंटनी के शिकार होकर सड़कों पर।

यह है ऊपर से मजदूरों के हितों की हिमायती दिखायी पड़ने वाली संस्था

(पेज 7 पर जारी)

गांव से उजड़े और दिल्ली में बसे एक मजदूर की कहानी

हमारे पड़ोस में राम विलास नाम के एक मजदूर भाई रहते है। भाई राम विलास स्थायी रूप से गोरखपुर जिले के एक गांव के रहने वाले हैं। रामविलास तीन भाई हैं जिसमें रामविलास ही सबसे बड़े हैं। रामविलास तो साक्षर भी नहीं हैं लेकिन उनके दोनों भाई सातवीं या आठवीं तक की स्कूली शिक्षा प्राप्त किये हैं। गांव में घर की पुश्तैनी खेती बहुत कम होने से केवल खेती के सहारे घर का सामान्य खर्च भी चलना मुश्किल हो गया। आधुनिक कृषि यंत्रों, ट्रैक्टर तथा मशीनों आदि के आ जाने से गांव में मजदूरी मिलना भी सम्भव नहीं रहा। इसीलिए रामविलास एंव उनके दोनों भाई 13-14 वर्ष की छोटी उम्र से ही रोजगार की खोज में न जाने कहां-कहां खाक छानते हुए अन्त में पिछले सात-आठ वर्षों से दिल्ली में मजदूरी कर रहे हैं।

भाई रामविलास बताते हैं कि जब वे बारह-तेरह वर्ष के थे तभी गांव के एक आदमी के साथ असम भाग गये। वहां उस आदमी की अपनी पान की दूकान थी। रामविलास उसी दुकान में बहुत कम तनख्वाह लगभग 500 रुपये एवं भोजन पर काम करने लगे। इसी तरह रामविलास ने सात वर्षों तक उसी पान की दूकान पर मजदूरी की। लेकिन अब अपनी मातृभूमि की याद बहुत सताने लगी थी और असम काटने लगा था। रामविलास गांव आये। उनकी शादी हुई। शादी के एक डेढ़ वर्ष के बाद वे फिर नौकरी की तलाश में हरियाणा जाने को मजबूर हो गये। जहां वे भिमानी में एक धागा बनाने वाले कारखाने में काम करने लगे। हरियाणा में उन्हें बहुत कम मजदूरी (लगभग 1100) मिलती थी, जबकि वे इतने काबिल हैं कि वहां 4-4 मशीनें अकेले चलाते थे। उनका कहना है कि 8-8 मशीनें भी वे अकेले चला करके मालिक से इनाम पा चुके थे। लेकिन मजबूरी का नाम महात्मा गांधी। रामविलास 6 वर्षों तक हरियाणा में खटते रहे। क्या करते यहां तो कुछ था। घर पर तो वह भी नहीं था।

इधर राम विलास के दोनों छोटे भाई पढ़ाई छोड़कर रोजी-रोटी की तलाश में दिल्ली आ गये थे। जिसमें एक भाई स्कूटर पार्टस् की दुकान पर काम करने लगा और दूसरा फुटपाथ पर चाय बेंचता है। हरियाणा में रामविलास का हट्टा-कट्टा शरीर भी अब जवाब देने लगा था। काम इतना कठिन था कि वे बीमार पड़ गये। दवा इलाज ठीक से न होने के कारण वे वहां ठीक न हो सके और किसी तरह हरियाणा से दिल्ली अपने भाइयों के पास चले आये।

दिल्ली में रामविलास का दवा इलाज हुआ और वे कुछ महीनों में स्वस्थ हो गये। इसी समय 'तुलसी जर्दा' नामक कम्पनी में मजदूरों की भर्ती हो रही थी। और रामविलास इसमें भर्ती हो गये। इस तरह राम विलास पिछले पांच वर्षों से 'तुलसी जर्दा' में काम करते रहे हैं। यहां भी वे मजदूरों में बहुत प्रिय थे। मजबूत कद-काठी 4-5 मजदूरों का काम अकेले करने की क्षमता। वे बहुत भोले और दोस्तमिजाज भी हैं। अपने काम के साथ दोस्तों के काम में भी हमेशा सहयोग करते रहते थे। जबकि दो-तीन आदमी का काम तो उनका अपना ही काम था। आज से छः माह पहले तो रामविलास अपने छोटे भाइयों के पास ही रहते थे; लेकिन जब आजकल रामविलास को लगभग 1600 रुपये वेतन मिलने लगा तो रामविलास ने सोचा कि क्यों न बच्चों को दिल्ली अपने पास ले आवें और उन्हें यहीं पढ़ायें लिखायें। इसी उद्देश्य से रामविलास ने हमारे पड़ोस में 400 रुपये प्रतिमाह के किराये पर एक कमरा ले लिया और बच्चों एवं पत्नी के साथ यहां रहने लगे। कमरे में सुविधा के नाम पर मात्र बिजली है। शौच के लिए बाहर जाना पड़ता है। और पानी भी पास के पार्क में लगे उस हैण्ड पाइप से पीना पड़ता है, जिस पर दिल्ली प्रशासन ने लेबल लगा रखा है कि "यह पानी पीने योग्य नहीं है।" खैर पानी की कोई दूसरी व्यवस्था न होने के कारण हमारा पूरा मोहल्ला ही यही पानी पीने को मजबूर है।

इस प्रकार पिछले छः महीनों से राम विलास अपने परिवार के साथ हमारे पड़ोस में रह रहे हैं। बच्चों में लड़का बड़ा है जिसकी उम्र आठ वर्ष है तथा लड़की छोटी है जो छः वर्ष की है। जुलाई में राम विलास की योजना थी कि अगस्त में वेतन मिलने पर बच्चों का स्कूल में दाखिला करवा देंगे और उनका कापी किताब खरीद देंगे एवं कपड़ा भी बनवा देंगे। लेकिन पिछले 22 जुलाई को तुलसी जर्दा में कार्यरत कुल 148 मजदूरों में से राम विलास समेत 98 मजदूरों को बिना किसी पूर्व सूचना एवं नोटिस के कम्पनी ने मात्र यह कहकर निकाल दिया कि उसके पास काम का अभाव है। कम्पनी की इस कार्यवाही से रामविलास की बच्चों को पढ़ाने की योजना धराशायी हो गयी। नगर निगम के प्राथमिक विद्यालय का प्रवेश शुल्क और कापी-किताब का खर्च भी वे नहीं जुटा सके।

तुलसी जर्दा के सभी मजदूरों ने निष्कासन के दो माह पहले सीटू के यूनियन की सदस्यता ग्रहण की थी। इसलिए मजदूरों पर हुए इस अत्याचार के खिलाफ लड़ाई की पूरी जिम्मेदारी सीटू पर आ गयी। सीटू के नेताओं ने सबसे पहले मजदूरों को शांति बनाये रखने को कहा और कानूनी कार्यवाही शुरू कर दी। कानूनी कार्यवाही तब से आज तक चल रही है और न जाने कितने महीनों तक चलेगी, लेकिन निकाले गये 98 मजदूरों का जीवन चलना दिनों-दिन मुश्किल होता जा रहा है। क्यों कि दिल्ली जैसे शहर में दो महीनों तक बिना पैसों के एक मजदूर कैसे जिन्दा रह सकता है। यूनियन की कानूनी कार्यवाही पर अपना धैर्य न रख पाने के कारण निकाले गये 98 में से 20 मजदूर अब तक हिसाब लेकर या तो अपने घर चले गये या फिर कहीं दूसरी जगह नौकरी या दिहाड़ी करने लगे।

मुझे ठीक-ठीक याद है जब भाई रामविलास के बच्चे दिल्ली में आये थे तो वे अपने टेपरिकार्डर पर विरहा सुनते हुए कभी-कभी थिरक उठते थे। लेकिन 22 जुलाई के बाद राम विलास हमेशा कुछ खोये-खोय रहने लगे। अब रामविलास दिल्ली में रह रहे अपने भाइयों के सहयोग से अपने परिवार का खर्च चला रहे थे। और वे कहा करते थे कि चाहे जो होगा लड़ाई में पीछे नहीं हटेंगे। इसीलिए कानूनी फैसले के इंतजार में नेताओं के घर का चक्कर लगाते रहे। एक शाम को रामविलास के घर ऐसी स्थिति आ गयी कि भगवान न करे कि ऐसी मुसीबत किसी के घर आये। आय बहुत कम होने के कारण केवल दो रोटियां ही बन पायी। एक रोटी में रामबिलास एवं उनकी पत्नी ने आधी-आधी खाकर पानी पी लिया। दूसरी रोटी को आधी-आधी करके बच्चों को दे दिया। लेकिन दोनों बच्चे आपस में लड़ने लगे क्योंकि लड़की को लग रहा था कि उसके भाई को आधी रोटी उसकी आधी रोटी से अधिक है। दोनों बच्चे और रोटी की मांग कर रहे थे। इस पर झल्लाकर रामविलास की पत्नी दोनों बच्चों को पीटने लगीं और पीटते-पीटते खुद भी रोने लगीं। इस घटना के बाद दूसरे दिन सुबह ही रामविलास साइकिल लेकर नौकरी ढूंढने निकल पड़े। तीन दिन चक्कर लगाने के बाद उन्हें 1200 रुपये प्रतिमाह की नौकरी इस शर्त पर मिली कि उन्हें 12 घंटे ड्यूटी देनी पड़ेगी। पिछले एक हफ्ते से रामविलास यही नौकरी कर रहे हैं। राम विलास कहते हैं कि वहां ऐसी हाड़तोड़ मेहनत है कि मुझे पांच आदमी का काम अकेले करना पड़ रहा है। सात दिन में ही मेरा वजन 2 किलो घट गया। लगता नहीं है कि इतना काम करते हुए मैं अधिक दिन तक जिन्दा रह पाऊंगा। ऐसी ही हालत तुलसी जर्दा कम्पनी द्वारा निकाले गये लगभग हर मजदूर की है।

- शिवरतन

समाजवाद

समाजवाद भइया आके रही
पूंजीवाद भइया जाके रही।

कतहूं ना रहि हो गरिबिया
कतहूं ना होई हो जुलुमवा
कतहूं ना होई हो शोषनवा
रजवा पंचायती आके रही
समाजवाद भइया आके रही।

कतहूं ना रहि जमींदरिया
कतहूं ना रहि जोतदरिया
कतहूं ना होई चोरिया-चमरिया
सुखवा के गीतिया कोइरिया गाके रही
समाजवाद भइया आके रही।

रोजी-रोजगरवा सब केहू पइहें
मुखवा-पियसिया से केहूं नाहीं मरिहें
दुखवा से केकरो कपरवा ना जरिहें
दुनिया में ललका निशनवा छाके रही।

समाजवाद भइया आके रही
पूंजीवाद भइया जाके रही।

- सूर्यदेव उपाध्याय
लेनिन पुस्तकालय, उल्हासनगर

आपस की बात

- बिगुल के अंक प्राप्त हुए। वर्तमान व्यवस्था के अन्यायी, अत्याचारी और शोषक चेहरे के विरुद्ध बिगुल की आवाज महत्वपूर्ण हैं।

व्यवस्था के चरित्र को परिभाषित करती हुई एक कविता बिगुल के लिए.

व्यवस्था

यह व्यवस्था
उन लोगों के लिए
ब्लू फिल्म है,
जिनके पास
अपना अंधेरा है।
यह व्यवस्था
बैसाखियों के गुण
गा-गाकर
पैर
काटे जा रही है
मनुष्यों के
इतना ही नहीं
यह व्यवस्था
खुली नाभि, और
नंगी पीठ से
असंख्य आंखें
लपेटकर
चलती है
और धीरे से
एक कसाईखाने से दूसरे,
दूसरे से तीसरे
जिसकी जहां विवशता हो
छोड़ आती है।

- कुंतल कुमार जैन
201, खेतवाड़ी मुख्य मार्ग,
बम्बई - 4000 04

- बिगुल की कापियां हमें बराबर मिल रही हैं। मार्क्सवादी-लेनिनवादी ताकतों का एकजुट होना आज की परिस्थितियों में बहुत जरूरी हैं -**प्रशान्त भट्ट**
महाराष्ट्र मेडिकोज एण्ड, सांइण्टिस्ट्स फ्रण्ट 11/317, निरलान कालोनी, गोरेगांव (प.) बम्बई -400062

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

(1) 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

(2) 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

(3) 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को यह नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

(4) 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनवाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा ही कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

(5) 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल यहां से प्राप्त करें

- शहीद पुस्तकालय, द्वारा डा० दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, मर्यादपुर, मऊ
- जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर
- विजय इन्फारमेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, गोरखपुर
- विश्वनाथ मिश्र, चेतना कार्यालय, बड़हलगंज, गोरखपुर–273402
- ओमप्रकाश, बाबा का पुरवा (पुराना), पेपर मिल रोड़, निशातगंज, लखनऊ
- जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, लखनऊ, (शाम 5 से 7)
- सत्यम वर्मा, यूनीवार्ता, काज़मी चैम्बर्स, 5 पार्क रोड, लखनऊ
- राहुल फाउण्डेशन, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ
- अरविन्द सिंह, 123, बिडला छात्रावास, बी०एच०यू० वाराणसी
- डा. डी०क०. सचान, (शस्य वैज्ञानिक), A–308 आवास विकास (गंगापुर), रामपुर–244901
- प्रो. प्यारे लाल, 139, फूलबाग कालोनी, पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय, पन्तनगर–263145
- राजेन्द्र प्रसाद, रेनु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, सोनभद्र
- अमृतलाल पाण्डेय, निकट प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, बसखारी, जि० – अम्बेडकरनगर
- एतकाद अहमद, डिपार्टमेंट ऑफ फाउण्डेशन आफ एजुकेशन, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली
- संतोष शर्मा, Q-No -L/61K, बरौनी रेलवे कालोनी, बरौनी, बेगूसराय
- चन्द्रकेतु नरायण शर्मा, एडवोकेट, सांचीपट्टी, बागगली गाछी, स्थान–पो–हाजीपुर, जि–वैशाली
- दीपशिखा पत्रिका मंडप, द्वारा श्री शिवदास पाण्डेय, पानी टंकी चौकी, क्लब रोड, मुजफ्फरपुर
- मैत्रेयी साहित्य संगम, सर्वे आफिस के सामने, लालबाग के.डी.एस. दरभंगा–846004
- अविनाश कुमार सिन्हा/रणजीत कुमार श्रीवास्तव द्वारा शैलेन्द्र श्रीवास्तव, बरियारी चक, मेंहसी, पूर्वी चम्पारण
- जनार्दन थापा, लुकसान बाज़ार, पो.कैरन जि. जलपाई गुड़ी – 735205
- डा.हरियश राय, ए–205 सुजल अपार्टमेंट, सेटेलाइट रोड, रामदेव नगर, अहमदाबाद–380054
- पुस्तक–पत्रिका बिक्री–वितरण केन्द्र डिल्ली बाजार चढ़ाव के पास (निकट पद्म कन्या स्कूल), काठमांडू
- विशाल पुस्तक पसल, अस्पताल लाईन, बुटवल, लुम्बिनी, नेपाल
- जलजला पुस्तक सदन, धमवोजी चौक, नेपालगंज बांके, नेपाल

दस्तावेज़

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा

(1921 में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की तीसरी कांग्रेस द्वारा स्वीकृत ''कम्युनिस्ट पार्टियों के संगठन पर प्रस्ताव'')

(चौथी किस्त)

व्ला०इ०लेनिन

पेरिस कम्यून से लेकर अबतक के वर्ग-संघर्षों के इतिहास की सबसे बुनियादी शिक्षाओं में से एक यह है कि अपनी एक सच्ची क्रांतिकारी पार्टी - एक कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व के बिना सर्वहारा वर्ग पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध अपनी लड़ाई को फैसलाकुन जीत की मंजिल तक कदापि नहीं पहुंचा सकता और समाजवाद की स्थापना कदापि नहीं कर सकता।

लेनिन ने पहली बार, समग्र रूप में एक क्रांतिकारी सर्वहारा पार्टी के निर्माण एवं गठन तथा स्वरूप एवं प्रकृति से संबंधित सिद्धान्त प्रतिपादित किये। मेंशेविकों और काउत्स्की से लेकर ख्रुश्चेव तक और आज के सी०पी०आई०, सी०पी०एम० तथा सी०पी०आई०(एम०-एल०) (लिबरेशन) जैसे संशोधनवादियों तक - सभी नकली कम्युनिस्ट जो क्रांति के लक्ष्य के साथ विश्वासघात करके महज पूंजीवादी चुनावी राजनीति और अर्थवाद के दलदल में धंस गये, कम्युनिस्ट पार्टी के सांगठनिक सिद्धान्तों को तोड़-मरोड़कर पेश करते हैं या भुला देते हैं। क्रांति से विमुख हो चुके लोगों को भला एक क्रांतिकारी पार्टी की क्या जरूरत? उन्हें लेनिन, स्तालिन और माओ की पार्टियों जैसी पार्टी की नहीं, चवन्निया मेंबरी वाली, महज खुली चुनावी पार्टियों की जरूरत होती है। उन्हें मजदूरों की आर्थिक मांगों और राजनीतिक अधिकारों की मांगों के लिए नहीं बल्कि महज ट्रेडयूनियनवाद के लिए ट्रेडयूनियनों की दुकानों की ज़रूरत होती है।

चिन्ता की बात यह है कि देश के विभिन्न हिस्सों में काम करने वाले बहुतेरे क्रांतिकारी कम्युनिस्ट ग्रुप भी आज सांगठनिक सिद्धान्तों और व्यवहार के मामले में बेहद ढिलाई बरत रहे हैं। बोल्शेविक सांगठनिक ढांचा खड़ा करन के बारे में वे गंभीर नहीं दीखते और ढीला-ढाला सामाजिक जनवादी आचरण कर रहे हैं।

एक सही-सच्ची कम्युनिस्ट पार्टी के पुनर्गठन के लिए सांगठनिक उसूलों पर अडिग रहना बुनियादी विचारधारात्मक महत्व का मुद्दा है। एक सही क्रांतिकारी सांगठनिक ढांचे के बगैर कोई पार्टी सही कार्यक्रम होने पर भी क्रांति को आगे नहीं बढ़ा सकती। आज ज़रूरत है कि वर्ग-सचेत सर्वहारा वर्ग को और कम्युनिस्ट कतारों को बोल्शेविक सांगठनिक उसूलों से एक बार फिर परिचित कराया जाये।

इस उद्देश्य से हम 'बिगुल' में विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन के एक बहुमूल्य दस्तावेज का किश्तों में प्रकाशन कर रहे है।। कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की तीसरी कांग्रेस द्वारा पारित इस दस्तावेज का मसविदा स्वयं लेनिन ने तैयार किया था। इन आम सिद्धान्तों की लोकप्रिय व्याख्या बाद में स्तालिन ने भी अपनी पुस्तक 'लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त' में की। - सम्पादक

हमारा प्रचार क्रान्तिकारी है

20. खुले क्रान्तिकारी संघर्ष से जुड़ा हुआ हमारा मुख्य आम कर्तव्य है क्रान्तिकारी प्रचार (प्रोपेगैण्डा) और आंदोलन (एजिटेशन) चलाना। यह कार्य और इसका संगठन, अभी भी मुख्यतः जनसभाओं में समय-समय पर दिये जाने वाले भाषणों के जरिए पुराने रस्मी ढंग से चलाया जाता है तथा भाषणों और लेखों में अन्तर्निहित क्रान्तिकारी सारतत्व पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है।

मज़दूरों के आम हितों और आकांक्षाओं के आधार पर, खासकर उनके आम संघर्षों के आधार पर, कम्युनिस्ट प्रचार और आंदोलन की कार्रवाई को इस प्रकार चलाना चाहिए कि वह मज़दूरों के अंदर अपनी जड़ें जमा ले।

याद रखने लायक सबसे अहम नुक्ता यह है कि कम्युनिस्ट प्रचार का चरित्र क्रान्तिकारी होना चाहिए; इसलिए कम्युनिस्ट नारे और ठोस प्रश्नों पर अपने समग्र कम्युनिस्ट रुख के बारे में हमें विशेष ध्यान देना चाहिए और खासतौर पर सोचना-विचारना चाहिए।

एक सही रुख तक पहुंचने के लिए, न केवल पेशेवर प्रचारकों और आंदोलनकर्ताओं को, बल्कि सभी दूसरे पार्टी सदस्यों को भी सावधानीपूर्वक निर्देशित (शिक्षित) किया जाना चाहिए।

कम्युनिस्ट प्रचार और नारों के प्रमुख रूप

21. कम्युनिस्ट प्रचार के प्रधान रूप ये हैं : (क) व्यक्तिगत रूप से किया गया मौखिक प्रचार, (ख) औद्योगिक और राजनीतिक मजदूर आंदोलन में भागीदारी और (ग) पार्टी की पत्र-पत्रिकाओं और साहित्य के वितरण के द्वारा प्रचार। कानूनी या गैरकानूनी पार्टी के हर सदस्य को प्रचार के इन रूपों में से किसी एक या दूसरे में नियमित रूप से भागीदारी करनी होगी।

व्यक्तिगत प्रचार की कार्रवाई कार्यकर्ताओं के विशेष ग्रुपों द्वारा सुव्यवस्थित ढंग से घर-घर जाकर बातचीत के द्वारा समझाने-बुझाने, सहमत करने की कार्रवाई के रूप में चलाई जानी चाहिए। प्रचार की ऐसी कार्रवाई इस तरह चलाई जानी चाहिए कि पार्टी प्रभाव के क्षेत्र में एक भी घर छूटने न पाये। अपेक्षाकृत बड़े नगरों में पोस्टरों और पर्चों के वितरण का विशेष रूप से संगठित किया गया प्रचार अभियान आम तौर पर संतोषजनक परिणाम देता है। इसके अतिरिक्त दर्कशापों के अंदर साहित्य के वितरण के साथ-साथ ैक्शनों को नियमित रूप से व्यक्तिगत आंदोलनात्मक प्रचार (एजिटेशन) की कार्रवाई चलानी चाहिए।

जिन देशों में आबादी में राष्ट्रीय अल्पसंख्यक भी शामिल हैं, वहां इन अल्पसंख्यकों के सर्वहारा हिस्सों में प्रचार और आंदोलन चलाने की दिशा में आवश्यक ध्यान देना पार्टी का कर्तव्य है। जाहिर है कि प्रचार और आंदोलन की यह कार्रवाई उक्त राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों की भाषाओं में ही चलाया जाना चाहिए जिसके लिए पार्टी को आवश्यक विशेष निकायों का निर्माण करना चाहिए।

22. उन पूंजीवादी देशों में जहां सर्वहारा वर्ग का विशाल बहुमत क्रान्तिकारी चेतना के स्तर पर अभी नहीं पहुंच पाया है, कम्युनिस्ट आंदोलनकारियों को इन पिछड़े हुए मज़दूरों की चेतना को ध्यान में रखते हुए और क्रान्तिकारी कतारों में इनका प्रवेश आसान बनाने के लिए लगातार कम्युनिस्ट प्रचार के नये रूपों की खोज करते रहना चाहिए। अपने नारों के जरिए कम्युनिस्ट प्रचार को उन प्रस्फुटित होती हुई, अचेतन, अपूर्ण, ढुलमुल और अर्द्धपूंजीवादी क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों को उभारना और सामने लाना चाहिए जो मज़दूरों के दिमागों में पूंजीवादी परम्पराओं और अवधारणाओं के ऊपर हावी होने के लिए संघर्ष कर रही होती हैं।

साथ ही, कम्युनिस्ट प्रचार को सर्वहारा जनसमुदाय की सीमित एवं अस्पष्ट मांगों और आकांक्षाओं तक ही सीमित रहकर संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। इन मांगों और आकांक्षाओं में क्रान्तिकारी भ्रूण मौजूद रहते हैं और ये सर्वहारा वर्ग को कम्युनिस्ट प्रचार के प्रभाव के अंतर्गत लाने का साधन होती है।

मजदूर वर्ग के रोजमर्रा के संघर्षों का नेतृत्व करो

23. सर्वहारा जनसमुदाय के बीच कम्युनिस्ट आंदोलन (या आंदोलनात्मक प्रचार) का काम इस प्रकार चलाया जाना चाहिए कि संघर्षरत सर्वहारा हमारे कम्युनिस्ट संगठन को साहसी, बुद्धिमान, ऊर्जस्वी और यहांतक कि अपने खुद के मजदूर आंदोलन के हर हमेशा वफादार नेता के रूप में जाने।

इसे हासिल करने के लिए कम्युनिस्टों को मजदूरों के सभी प्रारम्भिक संघर्षों और आंदोलनों में भाग लेना चाहिए तथा काम के घण्टों, काम की परिस्थितियों, मजदूरी आदि को लेकर उनके और पूंजीपतियों के बीच होने वलो सभी टकरावों में मजदूरों के हतों की हिफाजत करनी चाहिए। कम्युनिस्टों को मजदूर वर्ग के जीवन के ठोस प्रश्नों पर भी ध्यान देना चाहिए। उन्हें इन प्रश्नों की सही समझदारी हासिल करने में मज़दूरों की सहायता करनी चाहिए। उन्हें मजदूरों का ध्यान सर्वाधिक स्पष्ट अन्यायों की ओर आकर्षित करना चाहिए तथा अपनी मांगों को व्यावहारिक तथा सटीक रूप में सूत्रबद्ध करने में उनकी सहायता करनी चाहिए। इस तरह वे मजदूर वर्ग के भीतर एकजुटता की स्पिरिट और देश के सभी मजदूरों के भीतर एक एकीकृत मजदूर वर्ग के रूप में, जो कि सर्वहारा की विश्व सेना का एक हिस्सा है, सामुदायिक हितों की चेतना जागृत कर पायेंगे।

सिर्फ इस प्रकार के रोजमर्रा के प्रारंभिक कर्तव्यों की पूर्ति करके तथा सर्वहारा के सभी संघर्षों में भाग लेकर ही कम्युनिस्ट पार्टी एक सच्ची कम्युनिस्ट पार्टी के रूप में विकसित हो सकती है। सिर्फ इस प्रकार के तरीकों को अपनाकर ही वह घिसे-पिटे, तथाकथित शुद्ध समाजवादी प्रचार करने वाले, सिर्फ नये सदस्य भरती करने वाले तथा सुधारों और सभी संसदीय संभावनाओं का इस्तेमाल कर पाने की संभावनाओं या असंभावनाओं की बातें करते रहने वाले प्रचारकों से अपने को अलग कर सकेगी। शोषकों के विरुद्ध चलने वाले शोषितों के रोजमर्रा के संघर्षों और विवादों में पार्टी सदस्यों का आत्मत्यागपूर्ण और चेतन सहयोग न केवल सर्वहारा अधिनायकत्व की विजय के लिए बल्कि उससे भी अधिक, इस अधिनायकत्व को कायम रखने के लिए नितान्त आवश्यक है। पूंजीवाद के हमलों के खिलाफ छोटे-छोटे संघर्षों में मेहनतकश अवाम का नेतृत्व करके ही कम्युनिस्ट पार्टी पूंजीपति वर्ग के ऊपर प्रभुत्व स्थापित करने के संघर्ष में सर्वहारा वर्ग का सुव्यवस्थित नेतृत्व कर पाने की क्षमता प्राप्त करते हुए मेहनतकश जनसमुदाय का हिरावल दस्ता बन सकेगी।

प्रत्येक संघर्ष की अगली कतार में

24. खासतौर पर हड़तालों, तालाबन्दियों और मज़दूरों की बड़े पैमाने पर बर्खास्तगी को लेकर होने वाले मज़दूर आंदोलनों में भागीदारी के लिए कम्युनिस्टों को पूरी ताकत झोंककर लामबंद होना चाहिए।

मज़दूरों द्वारा काम करने की परिस्थितियों में मामूली सुधारों की मांग को लेकर चलाये जाने वाले आंदोलनों के प्रति तिरस्कार का रुख अपनाना या कम्युनिस्ट कार्यक्रम और अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सशस्त्र क्रान्तिकारी संघर्ष की आवश्यकता के नाम पर उनके प्रति निष्क्रियता का रुख अपनाना कम्युनिस्टों के लिए भारी भूल होगी। मजदूर अपनी जिन मांगों को लेकर पूंजीपतियों से लड़ने के लिए तैयार और रजामंद हों, वे चाहे कितनी भी छोटी या मामूली क्यों न हों, कम्युनिस्टों को संघर्ष में शामिल न होने के लिए उन मांगों के छोटी होने का बहाना नहीं बनाना चाहिए। हमारी आंदोलनात्मक गतिविधियों के खिलाफ इस तरह के इल्जाम की गुंजाइश नहीं रहनी चाहिए कि हम मजदूरों को मूर्खतापूर्ण हड़तालों या अन्य नासमझी भरी कार्रवाइयों के लिए उभाड़ते और उकसाते हैं। संघर्षरत जनता के बीच कम्युनिस्टों को यह प्रतिष्ठा अर्जित करने की चेष्टा करनी चाहिए कि वे हिम्मत वाले और संघर्षों में कारगर भूमिका निभाने वाले लोग हैं।

आंशिक मांगों के लिए लड़ना सीखो

25. रोजमर्रा की जिन्दगी के कुछ सबसे मामूली सवालों पर ट्रेड यूनियन आंदोलन के भीतर काम करने वाले कम्युनिस्ट सेलों (या फ्रैक्शनों) ने व्यवहार में अपने आप को लगभग असहाय सिद्ध किया है। कम्युनिज्म के सामान्य सिद्धान्तों के बारे में प्रवचन करते जाना और उसके बाद जब ठोस सवाल सामने आयें तो साधारण सिण्डिकलिस्टों (संघाधिपत्यवादियों) के नकारात्मक दृष्टिकोण के चक्कर में फंस जाना आसान तो है पर उपयोगी नहीं है। यह व्यवहार केवल पीले आम्स्टर्डम इण्टरनेशनल** के हाथों में खेलने के बराबर है।

इसके विपरीत कम्युनिस्टों को अपने व्यवहार में प्रत्येक प्रश्न के व्यावहारिक पहलू के सावधानीपूर्वक किये गये अध्ययन से ही निर्देशित होना चाहिए।

मिसाल के तौर पर, सभी कामकाजू समझौतों (वेतन और काम के हालात से संबंधित) का सैद्धान्तिक रूप से या उसूली तोर पर विरोध करके अपने को संतुष्ट कर लेने के बजाय उन्हें आम्स्टर्डम इण्टरनेशनल के नेताओं की सिफारिश के मुताबिक हुए विशेष प्रकार के समझौतों (वेतन सम्बंधी समझौतों) को लेकर होने वाले संघर्ष का नेतृत्व करना चाहिए। बेशक यह जरूरी है कि सर्वहारा की क्रान्तिकारी तत्परता की राह में खड़ी की जाने वाली किसी भी बाधा की भर्त्सना की जाये और उसका प्रतिरोध किया जाये और यह भी सर्वविदित है कि पूंजीपतियों और उनके आम्स्टर्डमपंथी भाड़े के टट्टूओं का मकसद ही यह होता है कि हर किस्म के कामकाजू समझौतों में मजदूरों के हाथ बांध दिये जायें। इसलिए यह कम्युनिस्टों का कर्तव्य है कि वे इस तरह के समझौतों के असलियत के बारे में मजदूरों को आगाह करें। कम्युनिस्ट ऐसे समझौतों की वकालत करके, जिनसे मजदूरों की राह में बाधा न पड़ें, इस काम को सबसे अच्छे ढंग से अंजाम दे सकते हैं।

ट्रेड यूनियन संगठनों द्वारा बेरोजगारी, बीमारी और अन्य मामलों में हासिल की गई सुविधाओं के बारे में भी यही किया जाना चाहिए। संघर्ष कोष की स्थापना और हड़ताली तनख्वाह देना आदि अपने आप में ऐसे कदम हैं जिनका समर्थन किया जाना चाहिए।

इसलिए, ऐसी कार्रवाइयों का उसूली तौर पर विरोध करना गलत होगा। लेकिन कम्युनिस्टों को मजदूरों के सामने यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि इस तरह के कोषों के संग्रह करने और उनके इस्तेमाल करने के आम्स्टर्डमपंथी नेताओं द्वारा बताये गये तरीके मजदूर वर्ग के सभी हितों के खिलाफ हैं। बीमारी के लाभ (सिक बेनिफिट) वगैरह के संबंध में कम्युनिस्टों को मजदूरों की तनख्वाह से उसका एक हिस्सा लेने की व्यवस्था तथा स्वेच्छा के आधार पर जमा किये जाने वाले कोषों के सम्बन्ध में लागू की गई सभी अनिवार्यता की शर्तों को खत्म करने पर जोर देना चाहिए। फिर भी यदि कुछ ट्रे ड यूनियन सदस्य स्वयं अंशदान करके बीमारी के लाभ हासिल करने के इच्छुक हों तो इसे इसलिए सीधे रोका नहीं जाना चाहिए कि इससे लोगों द्वारा हमें गलत समझे जाने का अंदेशा रहेगा। घनीभूत व्यक्तिगत प्रचार द्वारा ऐसे मजदूरों को उनकी निम्न पूंजीवादी धारणाओं से मुक्त करके अपने पक्ष में करना आवश्यक होगा।

संशोधनवादी और सुधारवादी ट्रेडयूनियन नेताओं का ठोस ढंग से पर्दाफाश करो

26. सामाजिक जनवादियों और निम्न पूंजीवादी ट्रेड यूनियन नेताओं तथा विभिन्न लेबर पार्टियों के नेताओं के खिलाफ संघर्ष में समझाने-बुझाने से अधिक कामयाबी की उम्मीद नहीं की जा सकती। उनके खिलाफ संघर्ष अधिकतम जोर-शोर के साथ चलाया जाना चाहिए और इसका सबसे अच्छा तरीका यह है कि उन्हें उनके अनुयाइयों से अलग कर दिया जाये और मजदूरों को इन गद्दार समाजवादी नेताओं

(पेज 7 पर जारी)

सर्वहारा वर्ग को उसके ऐतिहासिक क्रान्तिकारी मिशन की याद दिलानी होगी
अर्थवाद और ट्रेडयूनियनवाद के दलदल से मजदूर आंदोलन को बाहर निकालना होगा

(पेज 1 से आगे)

'80 के दशक में धीरे-धीरे इस दिशा में बदलाव की शुरुआत हुई और '90 के दशक में नरसिंह राव-मनमोहन सिंह ने नई आर्थिक नीति के द्वारा निजीकरण की नीतियों को पूरे तौर पर लागू कर दिया। भारतीय पूंजीपति वर्ग पर ऐसा करने के लिए अपनी खुद की ज़रूरतों के अतिरिक्त साम्राज्यवादी देशों को विवश कर देने वाला दबाव भी था। भीषण और अभूतपूर्व लम्बी मंदी का शिकार साम्राज्यवादी विश्व गरीब देशों के शासक पूंजीपतियों पर लगातार दबाव दे रहा था कि वे यदि अपने संकटों से मुक्ति के लिए और ज्यादा मुनाफा निचोड़ने के लिए आधुनिक तकनोलॉजी और पूंजी चाहते हैं, विश्व बाज़ार में किसी तरह खड़े होने भर की जगह भी चाहते हैं तथा आर्थिक घेरेबंदी एवं भयादोहन का शिकार नहीं होना चाहते; तो उन्हें विदेशी पूंजी की लूट के लिए द्वार पूरीतरह खोलने होंगे, सार्वजनिक क्षेत्र को धीरे-धीरे समाप्तप्राय कर देना होगा, तथा नयी अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था में जूनियर पार्टनर की स्थिति को स्वीकार करना होगा।

मूलतः यही कारण है कि आज तरह-तरह की तिकड़में करके सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों को भीतर से इतना कमजोर कर दिया जाता है कि वे स्वयं चलने लायक ही न रह जायें औरफिर उन्हें औने-पौने दामों पर, निजी पूंजीपतियों को सौंप दिया जाता है। आज इस कुचक्र के उदाहरणों की कमी नहीं है। यहां पर हम तीन उदाहरणों को लें। वे हैं लखनऊ में स्थित उत्तरप्रदेश सरकार के तीन उपक्रम यू.पी.डी.पी.एल., स्कूटर्स इण्डिया और अपट्रॉन।

उत्तर प्रदेश में निजीकरण-कुचक्र के तीन प्रतिनिधि उदाहरण

लखनऊ स्थित यू.पी.डी.पी.एल. कारखाना (उ. प्र. ड्रग्स एण्ड फार्मास्यूटिकल लिमिटेड), 1990 तक स्तरीय जीवनोपयोगी दवायें बनाने के लिए मशहूर था। नौकरशाही के तमाम घपलों-घोटालों के बावजूद अपने 500 कुशल श्रमिकों के सहारे यह कारखाना अपनी क्षमता से अधिक उत्पादन करता था, फिर भी प्रदेश के सारे सरकारी अस्पतालों की मांग पूरी नहीं हो पाती थी। गरीब जनता को सस्ती दवाएं उपलब्ध कराने के लिए जरूरत इस बात की थी कि इस तरह के कई सरकारी कारखाने प्रदेश में स्थापित किये जाते, क्योंकि बहुराष्ट्रीय कंपनियों और देशी पूंजीपतियों के कारखानों में उत्पादित उन्हीं दवाओं की कीमत कई गुना ज्यादा थी। फिर आया आर्थिक उदारीकरण का दौर। इस दौर में सरकारी अस्पतालों द्वारा दवा वितरण को कम करते-करते समाप्त कर दिया गया। वी.आई.पी. मार्का लोगों के लिए सरकारी अस्पतालों में प्राइवेट कम्पनियों के दवाओं की खरीद का नया नियम बनाया गया, जिसे 'लोकल पर्चेज' कहा जाता है। आम जनता के लिए सारी सुविधाएं लगभग बन्द हो गईं। अब सरकारी अस्पतालों के आर्डर यू.पी.डी.पी.एल. को मिलने बन्द होने लगे इसके सामने अब अपना माल बेचने की समस्या आ खड़ी हुई। यह काम आसानी से हो सकता था क्योंकि इस कारखाने में उत्पादित दवाओं की गुणवत्ता उच्चकोटि की थी सिर्फ उचित नीतियों की जरूरत थी। नयी अर्थनीति में इसकी कोई गुंजाइश ही न थी, क्योंकि अब उद्देश्य सरकारी उद्यमों को भीतर से कमजोर करने पर था। परिणाम यह हुआ कि बिक्री के कृत्रिम अभाव में कारखाने का उत्पादन लगातार कम होते-होते बन्द हो गया। पिछले चार वर्ष से सरकारी कर्ज़ अनुदान से श्रमिकों को वेतन देते-देते कारखाने पर 20 करोड़ का कर्ज़ चढ़ गया। इस तरह एक अच्छे-खासे सरकारी कारखाने को दिवालिया करके निजी पूंजीपतियों के हवाले करने के लिए तैयार कर दिया गया।

दूसरा उदाहरण स्कूटर्स इंडिया के कारखाने का है। इसकी स्कूटर इकाई तो काफी पहले ही बन्द की जा चुकी है, जबकि उसी इकाई द्वारा उत्पादन के लिए मोपेड का मॉडल डिजाइन कराया गया था, उसे अब बजाज कम्पनी द्वारा 'सनी' नाम से बेचकर अकूत मुनाफा कमाया जा रहा है। इसकी जो दूसरी इकाई विक्रम टैम्पों बनाती है और इसका बाजार भी अच्छा है, इसे अन्दर से पिछले पांच वर्षों से कमजोर किया जा रहा है। जिन पुर्जों को कारखाने में ही निर्मित किया जा सकता है उन्हें जानबूझकर दूने-तिगुने दाम पर बाजार से खरीदा जा रहा है और उनमें से भी आधे खराब होते हैं जो टैम्पों में इस्तेमाल होने की जगह रद्दी में बेंच दिये जातेहैं। बाहर की यह खरीद 40 प्रतिशत से भी अधिक की हो चुकी है, इस तरह श्रमिकों के हाड़तोड़ श्रम से अर्जित मुनाफा बाहर की खरीद के रास्ते निजी पूंजीपतियों और भ्रष्ट अधिकारियों की जेब में जा रहा है। नयी अर्थनीति ने कारखाने में तकनोलाजी के उन्नयन पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा रखा है जिससे कारखाने को जल्द दिवालिया बनाने में मदद मिले।

तीसरा उदाहरण उ.प्र. के ही लखनऊ स्थित अपट्रान कारखानों का है। एक समय था कि देश की प्रसिद्ध टेलीविजन और इलेक्ट्रॉनिक कम्पनियों के उत्पादों के महत्वपूर्ण हिस्से अपट्रॉन द्वारा तैयार किये जाते थे। स्तरीय पुर्जों के निर्माण में अपट्रॉन का विशेष स्थान था। नई नीतियों और आर्थिक उदारीकरण का फायदा उठाकर निजी क्षेत्र की कम्पनियाँ अपने पुर्जे अपट्रॉन से खरीदने की जगह विदेशी कम्पनियों से खरीदनें लगीं, इससे अपट्रान के उत्पादों के सामने बाजार की समस्या आ गयी। बाजार में टिकने केलिए उन्नत तकनोलॉजी और मार्केटिंग की नीति की जरूरत थी, लेकिन किया गया ठीक उलटा। इस तरह अपट्रान को दिवालिया कर दिया गया और अब उसे कौड़ियों के मोल निजी पूंजीपतियों के हाथ सौंपने की बात चल रही है।

पिछले दस वर्षों में भारत में इन नीतियों की बदौलत हजारों सरकारी कारखाने तबाह-बर्बाद हुए हैं और हर साल लाखों श्रमिक अपनी नौकरियों से हाथ धोकर सड़क पर भिखारियों की तरह मरने को छोड़ दिये जा रहे हैं। वे श्रमिक जिन्होंने आजादी के बाद पचास वर्षों में अपने श्रम कौशल से इस देश की भौतिक सम्पदा में अकूत वृद्धि की है, उन्हें आज यह नयी अर्थनीति क्या दे रही है? सिर्फ मौत!!

निजीकरण यानी छंटनी-तालाबंदी की खुली छूट और मज़दूरों के बुनियादी जनवादी अधिकारों पर डाका

नई आर्थिक नीति के लागू होने के बाद पूंजीपति मेहनतकश जनता से ज्यादा से ज्यादा अधिशेष निचोड़ने केलिए अपने उन कारखानों से जिनमें पुरानी तकनोलॉजी इस्तेमाल होती रही है और मजदूरों की अपेक्षतया बड़ी संख्या काम करती रही है, पूंजी निकालकर या तो ऐसे उद्यमों में लगा रहे हैं जिनमें आधुनिक तकनीक के सहारे कम मज़दूरों से ही काम लेकर ज्यादा मुनाफा कमाया जा सकता है या फिर वित्तीय तंत्र में निवेश कर रहे हैं। दूसरे, जिन कारखानों को बंद करने के बजाय वे आधुनिकीकरण कर रहे हैं, उनसे भी किसी न किसी कानूनी या गैरकानूनी ढंग से मज़दूरों की छंटनी कर दी जा रही है। जिन सरकारी कारखानों को पूंजीपति खरीद रहे हैं उनसे भी श्रमिकों की भारी आबादी की छंटनी कर दी जा रही है। औद्योगिक इकाइयों को बंद करने और छंटनी के संबंध में आंदोलनों-संघर्षों के दबाव के चलते राज्य ने जो भी क़ानूनी प्रतिबंध लागू किये थे, वे लगभग पूरी तरह हटाये जा चुके हैं। देश का संगठित मज़दूर वर्ग विगत सौ वर्षों के दौरान कठिन संघर्षों और कुर्बानियों से अर्जित अधिकारों और सुरक्षा कवचों को एक के बाद एक लगातार खोजा जा रहा है। श्रम न्यायालयों और केन्द्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण की भूमिका मालिकों के दलालों-एजेण्टों से अधिक कुछ नहीं रह गयी है। यदि कुछ फैसले मज़दूरों के पक्ष में होते भी हैं तो मालिक उन्हें लागू नहीं करते। न्यायिक सक्रियता के नाम पर न्यायपालिका भी कभी पर्यावरण सुरक्षा की आड़ लेकर तो कभी कोई और आड़ लेकर श्रमिक हितों पर ही लगातार चोट कर रही है। पिछले दिनों दिल्ली के पर्यावरण और ताज की हिफाजत के नाम पर उद्योगपतियों को अपने कारखानों को बंद करके उनसे पूंजी निकालने की छूट दे दी गई और नाममात्र के मुआवजे की उम्मीद पाले (वह भी इन कारखानों में काम करने वाले सिर्फ 15-20 फीसदी स्थायी मज़दूरों को ही मिल पायेगा) करीब एक लाख मज़दूर अपने परिवारों के साथ सड़क पर आ गये।

और ट्रेड यूनियनें क्या कर रही हैं ?

तब प्रश्न उठता है कि ट्रेड-यूनियनें, जिनका काम मज़दूरों के हितों और अधिकारों की हिफाजत करना है, वे कर क्या रही हैं? ज्यादातर महज रस्मी विरोध, चुप्पी और दलाली या फिर बाज वक्त खुले आम गद्दारी। अलग-अलग कुछ कारखानों में कुछ उग्र और जुझारू संघर्ष हुए भी तो वे या तो कुछ खास हासिल नहीं कर पाये, या ठहराव का शिकार हो गये या फिर बिखर गये। भूमण्डलीकरण के जिस दौर ने पूरी दुनिया के पैमानेपर चुनावबाज वामपंथ की असलियत को उजागर किया है उसी ने ट्रेड यूनियन नौकरशाही के असली चेहरे को, उनके अर्थवादी चरित्र और संघर्षों की परिणतियों को और उनकी सीमाओं को एकदम साफ कर दिया है। मजदूर आन्दोलन के पुनर्निर्माण और क्रांतिकारीकरण का कार्यभार आज के समय की फौरी चुनौती, फौरी जिम्मेदारी और फौरी समस्या बनती जा रही है, बन चुकी है।

मज़दूर वर्ग के सच्चे नुमाइन्दों और महान क्रान्तिकारी नेताओं-शिक्षकों ने पिछले डेढ़ सौ वर्षों के दौरान लगातार उस ट्रेड यूनियनवादी राजनीति के विरुद्ध आगाह किया है जो मज़दूरों को महज कुछ आर्थिक रियायतों, वेतनवृद्धि, बोनस-भुगतान और सीमित अधिकारों, सुविधाओं की लड़ाई तक ही सीमित रहने की पैरोकारी करती आई है। बुर्जुआ चुनावबाज पार्टियों से जुड़े ट्रेड यूनियन नेताओं के साथ ही पूंजीवादी संसदीय राजनीति के दायरे के भीतर काम करने वाली नकली वामपंथी पार्टियों (जिन्हें संशोधनवादी पार्टियां भी कहा जाता है) से जुड़े ट्रेड यूनियन नेता भी आज तक हर चंद कोशिश इसी बात की करते रहे हैं कि मज़दूर महज आर्थिक सुविधाओं रियायतों की मांग तक ही सीमित रहे और यदि किसी राजनीतिक अधिकार के लिए संघर्ष करे भी तो अत्यंत सीमित-संकीर्ण दायरे में।

नकली वामपंथी ट्रेड यूनियनवादियों के तीन "महत्वपूर्ण योगदान"

पहली बात, ये सभी नकली वामपंथी ट्रेड यूनियन नेता मज़दूर वर्ग को आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक संघर्षों में उतारने के बजाय या तो यह तर्क देते रहे हैं कि आर्थिक संघर्ष ही एक दिन आगे बढ़कर राजनीतिक अधिकार और मुक्ति के संघर्ष में बदल जायेंगे, या फिर इन्होंने राजनीतिक संघर्ष तक की बात करना बंद कर दिया है।

दूसरी बात, जो इसी से जुड़ी है वह यह कि नकली वामपंथी दलों से जुड़ी ट्रेड यूनियनों ने मज़दूर वर्ग की राजनीतिक चेतना का धरातल ऊँचा उठाने, उसका क्रांतिकारीकरण करने या उसे उसके ऐतिहासिक मिशन (पूंजीवाद की कब्र पर समाजवाद के निर्माण के लिए पूरे समाज को क्रांति में नेतृत्व देने का मिशन) की याद दिलाने के लिए कभी कुछ नहीं किया। रस्मी तौर पर यदि कुछ राजनीतिक क्लास और प्रचार की कार्रवाइयां होती भी हैं तो उनमें उसी खुश्चेवी 'नकली कम्युनिज़्म' का पाठ पढ़ाया जाता है, जिसे भारतीय मज़दूर वर्ग को पढ़ाते-पढ़ाते डांगे-राजेश्वर राव खरीदते आदि कब्र में चले गये और सुरजीत नम्बूदिरीपाद, ज्योतिबसु, इन्द्रजीत गुप्त आदि आज़ भी कब्र में पैर लटकाये हुए या सत्ता की मलाई चाटते हुए लगातार पढ़ा रहे हैं। मज़दूर आंदोलन के एक पूरे चरण को इन्होंने याचनाओं-अर्जियों-चुनावों की चौहद्दी में कैद कर दिया और खण्ड-खण्ड में बांट दिया। इन्हीं 'रहनुमाओं' के आचरण का नतीजा है कि आज मज़दूर वर्ग का बड़ा हिस्सा इनसे बिदककर तमाम पूंजीवादी चुनावी पार्टियों की ट्रेड यूनियनी दुकानों से जाकर जुड़ गया है। और यह एक सच्चाई भी है कि इनके बीच यदि कोई फर्क है तो सिर्फ तेवरों और जुमलों का आचरण में तो कोई फर्क कदापि नहीं है।

तीसरी बात, अपने-अपने चुनावी वामपंथी दलों का जनाधार बढ़ाने के लिए नकली वामपंथी ट्रेड यूनियन बाजों ने 'दुनिया के मज़दूरों, एक हों' का नारा बुलन्द करते हुए अपने देश के मज़दूर वर्ग को ही खण्ड-खण्ड में बांटकर पूंजीवादी व्यवस्था की बहुमूल्य सेवा की है और उसकी वफादार सुरक्षा पंक्ति की भूमिका निभाई है।

मज़दूर आंदोलन में क्रांतिकारी चेतना और विचारधारा 'डालने' का सवाल

जैसा कि लेनिन ने बहुत पहले ही कहा था कि मज़दूर वर्ग के आंदोलन में क्रांतिकारी चेतना उसके भीतर से अपने आप नहीं पैदा होती बल्कि क्रांतिकारी सचेत तत्वों के (नेतृत्वकारी) कोर द्वारा बाहर से डाली जाती है। लेकिन मज़दूर आंदोलन के भीतर आज नकली क्रांतिकारी तेवर लिये हुए तमाम ऐसी प्रवृत्तियां भी मौजूद हैं जो पूंजीवादी और नकली वामपंथी ट्रेड यूनियन नेताओं से मज़दूर वर्ग के मोहभंग का लाभ उठाकर गरम और जुझारू बातें तो करती हैं, पर वे मज़दूर आंदोलन के भीतर एक या दूसरे रूप में स्वतः स्फूर्तता की पूजा करती हैं और सचेत तत्वों, हरावल दस्तों या सही सच्चे क्रांतिकारी वामपंथ की वैचारिक -राजनीतिक नेतृत्वकारी भूमिका की अवहेलना करती हैं। इसके चलते मज़दूर वर्ग के भीतर पहले से ही जड़ जमाये बैठी पूंजीवादी विचारधारा, पूर्वाग्रह और रूढ़ियां जड़ जमाए बैठी रहती हैं और मज़दूर पूंजी की उजरती गुलामी को अपनी नियति मानकर जीता रहता है।

ऐसे रैडिकल, 'स्वतंत्र' ट्रेड यूनियन नेताओं की नीयत यदि पाक-साफ रही है, तो भी उनके कामों का असर दूरगामी तौर पर (भले ही फौरी तौर पर आंदोलन को कुछ जीतें हासिल हो जायें) मज़दूर वर्ग की अंतिम मुक्ति के लक्ष्य के खिलाफ और इस व्यवस्था के पक्ष में ही गया है प्रायः ऐसा होता रहा है कि देश के इस या उस कोने से ऐसा कोई नाम उछलता रहा है जो उग्र आंदोलन खड़ा करता रहा है और फिर कुछ ही दिनों बाद आनुष्ठानिक ट्रेड यूनियन आंदोलन की मुख्य धारा में शामिल हो जाता रहा है।

कुछ ऐसे क्रांतिकारी वामपंथी ग्रुप भी हैं, जिन्होंने नकली वामपंथियों की अर्थवादी ट्रेड यूनियन राजनीति को बुरा-भला कहते हुए अलग से ट्रेड यूनियन, यहां तक कि कथित तौर पर अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन बना डाली पर व्यवहार में उन्होंने भी जो किया वह जुझारू अर्थवाद और स्वतः स्फूर्ततावाद से भिन्न कुछ भी नहीं था। पूंजीवादी और नकली वामपंथी विचारधारा, राजनीतिक पार्टियों और उनकी ट्रेड यूनियनों के प्रभाव से वे भारतीय मज़दूर वर्ग के एक छोटे हिस्से को भी बाहर नहीं निकाल पाये। कुछ क्षेत्रों कारखानों में मज़दूरों के कुछ आंदोलन खड़ा करके, कुछ जनाधार विकसित करके, कुछ सम्मेलन आदि करके वे संतुष्ट हैं और उन्हें गहरा विश्वास है कि सभी समस्याओं का रामबाण नुस्खा उनके पास है। संशोधनवादी और पूंजीवादी ट्रेड यूनियनों में शामिल मज़दूर वर्ग के बड़े हिस्से को साथ लेने के लिए इन ट्रेड यूनियनों में काम करने के बजाय उन्होंने इस कठिन कार्य से कतरा जाने की सुगम लेकिन संकीर्णतावादी-शुद्धतावादी "क्रान्तिकारी" राज चुन ली है। कुछ एक क्रांतिकारी संगठन ऐसे भी हैं जिन्होंने बंगाल में और कुछ अन्य स्थानों पर कुछ एक कारखानों में ही आर्थिक मांगों को लेकर मज़दूरों का लंबा जुझारू संघर्ष संगठित किया, पर कुशल-संगठित राजनीतिक प्रचार एवं उत्तेजना की कार्रवाई, अन्य कारखानों की व्यापक मज़दूर आबादी को साथ लेने की कुशलरणनीति एवं कौशल तथा जनता के अन्य वर्गों के संघर्षों के साथ तालमेल बनाने की नीति के अभाव के कारण तथा अपेक्षित रणकौशलात्मक लचीलेपन के अभाव के कारण ये संघर्ष ठहराव, थकान और बिखराव के शिकार हो गये।

पतन की एक लंबी ढलान पर फिसलकर आज यहां पहुंचा है भारतीय ट्रेड यूनियन आंदोलन

औपनिवेशिक शासन समाप्त होने के पचास वर्षों बाद, जब हम मज़दूर आंदोलन का सिंहावलोकन करते हैं तो हमें वर्तमान दुरवस्था की एक लंबी प्रक्रिया नज़र आती है। 1947 के पहले मज़दूरों ने अपनी आर्थिक लड़ाई लड़ने के साथ ही उपनिवेशवाद के विरुद्ध राजनीतिक लड़ाइयों में भी लगातार शिरकत की और राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष में गौरवशाली भूमिका निभाई तिलक की गिरफ्तारी के विरुद्ध बम्बई के मज़दूरों ने 1907 में पहली बार राजनीतिक हड़ताल की और यह सिलसिला 1946 के उस उत्कर्ष बिन्दु तक लगातार जारी रहा जब नौसेना और वायुसेना के सैनिकों के विद्रोह के साथ ही बंबई के गोदी मज़दूरों और कपड़ा मज़दूरों ने हड़ताल कर दी और फिर पूरे देश में उग्र मज़दूर हड़तालों-प्रदर्शनों का रेला-सा आ गया। याद करें, यही वर्ष था जब किसानों के तेभागा आंदोलन और पुनप्रा वायलार के आंदोलन के उत्कर्ष पर होने के साथ ही तेलंगाना संघर्ष भी शुरू हो चुका था। पूंजीवादी इतिहासकार लाख छिपाये,सच्चाई यह है कि इस व्यापक जनउभार से अंग्रेज उपनिवेशवादियों को यह अहसास हो गया कि अब भारत को प्रत्यक्षतः, राजनीतिक तौर पर, गुलाम बनाये रख पाना असंभव है और '47 में उन्हें अपना बोरिया-बिस्तर बांधना पड़ा।

अब यह अलग से एक विस्तृत चर्चा का विषय है कि तत्कालीन भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की किन विचारधारात्मक-राजनीतिक कमजोरियों और रणनीतिक भूलों-गलतियों के कारण यहां मज़दूर वर्ग की सत्ता कायम होने के बजाय पूंजीपति वर्ग की सत्ता कायम हुई जिसने साम्राज्यवादी आर्थिक हितों की भी पूरी हिफाजत की क्योंकि वह इससे भिन्न कुछ कर भी नहीं सकती थी। 1952 में तेलंगाना के सशस्त्र किसान संघर्ष की पराजय के बाद ही यहां की कम्युनिस्ट पार्टी क्रांति मार्ग से विचलित होकर संसदीय मार्ग पर चल पड़ी। वामपंथी ट्रेड यूनियन आंदोलन में पहले से ही अर्थवाद का जो भटकाव मौजूद था वह पूरी तरह हावी हो गया जो लगातार पतन की खाई की ओर फिसलता हुआ आज इस दुरवस्था के मुकाम तक पहुंचा है।

इस दौरान भारतीय शासक वर्ग की घोर मेहनतकश विरोधी नीतियों के खिलाफ अलग-अलग सार्वजनिक क्षेत्रों और निजी क्षेत्रों के मज़दूर कई बार उठ खड़े हुए और जुझारू संघर्ष किये, पर ट्रेड यूनियनवादी, अर्थवादी, भ्रष्ट, सत्तापरस्त नेतृत्व के कारण ये सभी संघर्ष या तो बिखर गये, पराजित हो गये, कुचल दिये गये या फिर सीमित रियायतों के पूर्ण विराम पर जाकर ठहर गये। 1974 और 1981 के रेल मज़दूरों और अन्य कुछ सार्वजनिक उपक्रमों के मज़दूरों की जुझारू हड़तालों को भला कौन भूल सकता है?

1967 में नक्सलबाड़ी किसान उभार के बाद जो क्रांतिकारी वामपंथी धारा अस्तित्व में आई, उसकी ओर भी मेहनतकश वर्ग ने काफी उम्मीदसे देखा। पर इस धारा का मुख्य हिस्सा जल्दी ही अतिवामपंथी दुस्साहसवाद के बचकानेपन के भटकाव से ग्रस्त हो गया ट्रेड यूनियन आंदोलन में क्रांतिकारी जनदिशा का विकल्प प्रस्तुत करने की जगह इस धारा ने ट्रेड यूनियनों की ही उपेक्षा की। बाद में इस गलती को समझा तो गया, पर कुछ क्रांतिकारी ग्रुप तो जनदिशा के नाम पर खुद ही अर्थवाद या जुझारू अर्थवाद की चौहद्दियों में कैद हो गये या स्वतः स्फूर्ततावाद के शिकार हो गये और कुछ अन्य ने क्रांति के कार्यक्रम की गलत, एकांगी समझदारी के कारण. औद्योगिक मज़दूर वर्ग के बीच काम की उपेक्षा की। कुछ संगठन ट्रेड यूनियन आंदोलन में संजीदगी के साथ कुछ सोच रहे हैं और प्रयोग कर रहे हैं, पर ठहराव अभी भी तोड़ा नहीं जा सका है। हां, यह जरूर है कि अभी भी यदि कोई उम्मीद है तो नक्सलबाड़ी किसान उभार के बाद पैदा हुए क्रांतिकारी वामपंथी शिविर के बिखरे हुए उन क्रांतिकारी तत्वों से ही, जो क्रांति की विचारधारा से विचलित नहीं हुए हैं और तमाम कमजोरियों के बाद भी जिनके संगठनों-ग्रुपों का सच्चा सर्वहारा क्रांतिकारी चरित्र अभी बरकरार है।

ट्रेड यूनियनवादियों ने मज़दूर वर्ग को निःशस्त्र, विभाजित और गैर राजनीतिक बनाकर पूंजीवाद की ऐतिहासिक सेवा की है!

बहरहाल मूल चर्चा पर वापस लौटें पूरी दुनिया के स्तर पर और हमारे देश में भूमण्डलीकरण की लहर या आर्थिक नवउपनिवेशवाद दौर,निजीकरण उदारीकरण का दौर इसी कठिन समय में आया है, जब अर्थवाद ने ट्रेड यूनियनवाद ने दशकों लंबी प्रक्रिया के बाद मज़दूर वर्ग को पूरीतरह निःशस्त्र कर दिया है। उसमें निराशावाद, नियतिवाद और पूंजीवादी विचारधारा गहराई तक जड़ें जमाये हुए हैं और उसे खण्ड-खण्ड में बांट दिया गया है। कहा जा सकता है कि एक बार फिर संशोधनवाद ने, नकली वामपंथ ने, अर्थवाद ने, ट्रेड यूनियनवाद ने पूंजीवाद की बहुमूल्य सेवा की है।

नई आर्थिक नीति एक भारतीय नहीं बल्कि वैश्विक परिघटना है जो विश्व पूंजीवाद की जीत की नहीं बल्कि वास्तव में चरम संकट लंबी विश्वव्यापी मंदी के असाध्य, अभूतपूर्व ढांचागत संकट की परिचायक है।

इस नये विश्व ऐतिहासिक दौर की एक विशिष्टता यह भी है कि आज यदि मज़दूर वर्ग अपने पहले से अर्जित राजनीतिक अधिकारों की हिफाजत के लिए संघर्ष नहीं करेगा, यदि वह राजनीतिक संघर्ष नहीं करेगा और यदि वह एकजुट होकर नहीं लड़ेगा तो वह अपने छोटे से छोटे आर्थक हित की हिफाजत भी नहीं कर पायेगा और छोटी से छोटी आर्थिक रियायत भी हासिल नहीं कर पायेगा। आर्थिक और राजनीतिक संघर्ष हमेशा ही अविभाज्यतः जुड़े रहे हैं पर पूंजीवादी व्यवस्था के सीमांतों पर लड़े जाने वाले आज के वर्ग-युद्ध में ये एक दूसरे से एकदम प्रत्यक्षतः जुड गये हैं और काफी हद तक गुंथ गये हैं। क्योंकि पूंजीपति वर्ग आज मज़दूरों को कोई भी रियायत देने की स्थिति में नहीं है और छंटनी-तालाबंदी-वेतनजाम आदि के खिलाफ सड़कों पर उतरने वाले मेहनतकश अवाम के खिलाफ वह जनवाद के सभी रामनामी चादरों को उतार फेंककर निरंकुश दमन के हथियारों के लिए तैयार हो चुका है।

अलग-अलग कारखानों में अलग-अलग सेक्टरों में मज़दूर वर्ग जिस अन्याय और आपदाओं के विरुद्ध जूझ रहा है, उसका मूल कारण एक ही है और वह है भारतीय पूंजीवाद की नई आर्थिक नीति। पर ट्रेड यूनियनों के अवसरवादी नेतृत्व के चलते, स्थिति यह है कि छंटनी, और निजीकरण की एक ही स्थिति के खिलाफ एक ही शहर के तीनसार्वजनिक उपक्रमों के मज़दूर भी आज एक जुट होकर संघर्ष नहीं कर पा रहे हैं (जिनका उदाहरण हमने ऊपर दिया है) अलग-अलग वे लड़ रहे हैं और थक रहे हैं और हार रहे हैं।

आखिर उपाय क्या है? हमें क्या करना होगा?

उपाय एक ही है। भ्रष्ट, अवसरवादी ट्रेड यूनियन नौकरशाही के असली चेहरे को पहचानना होगा और यह समझना होगा कि मज़दूर एकता का नारा आज एक रणनीतिक नारा मात्र न रहकर एक फौरी ज़रूरत बन गया है। मज़दूर वर्ग को इस बात को अच्छी तरह समझ लेना होगा कि बेरोजगारी, छंटनी, तालाबंदी, का कहर बरपा करने वाली और दशकों के संघर्षों-बलिदानों के बाद हासिल उनके अधिकारों को छीनने वाली उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को किसी एक या कुछ एक कारखानों में उलटा नहीं जा सकता। पूंजीपति वर्ग अब छिटपुट हड़तालों के दबाव में छोटी-छोटी रियायतें भी देने को तैयार नहीं है और अपने सरकारी दमनतंत्र के पूरे इस्तेमाल तक के लिए तैयार हो चुका है। लड़ाई पूंजीवादी व्यवस्था के सीमांतों पर लड़ी जा रही है।

मज़दूर वर्ग को अपने हितों-अधिकारों की हिफाजत के लिए एकजुट होने के साथ ही इस बात को भली भांति समझना होगा कि आर्थिक संघर्षों के साथ ही उसे अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए भी एकजुट होकर लड़ना होगा।

सच्चे क्रांतिकारी वामपंथियों को मज़दूर वर्ग के भीतर घनीभूत और व्यापक क्रांतिकारी राजनीतिक प्रचार का कार्य लगातार चलाना होगा, अर्थवाद और ट्रेड यूनियनवाद के विरुद्ध लगातार प्रचार कार्य करना होगा और वैज्ञानिक समाजवाद की विचारधारा को बौद्धिक दृष्टि से अपेक्षतया अधिक विकसित सर्वहारा लोगों के पास, फिर आम सर्वहारा वर्ग के पास और फिर उनके जरिए एक-एक कारखानो में आर्थिक राजनीतिक संघर्ष के रूप में जारी वर्ग संघर्ष के भीतर ले जाना होगा।

सच्चे क्रांतिकारी वामपंथियों को बुर्जुआ विचारधारा के प्रभाव में आये मज़दूरों के छोटे-छोटे केन्द्रक बनाने होंगे, उनके जरिए पूरी आम सदस्यता को लगातार प्रभावित-शिक्षित करना होगा और फिर ट्रेड यूनियन एकता के रूप में व्यापक मज़दूर एकता के लिए दबाव बनाना होगा। जहां इस तरह काम कर पाना संभव न हो और मज़दूरों की अच्छी खासी आबादी पर क्रांतिकारी विचारों का प्रभाव हो, वहां अलग से ट्रेड यूनियन का गठन किया जा सकता है, पर किसी तरह के 'शार्टकट' जल्दबाजी या 'वामपंथी' बचकानेपन अथवा संकीर्णतावादी रुझान के चलते ऐसा नहीं किया जाना चाहिए।

वह समय दूर नहीं, जब नई आर्थिक नीतियों के भयावह दुष्परिणाम न सिर्फ इस व्यवस्था के विरुद्ध फैसलाकुन संघर्ष को सर्वहारा वर्ग केलिए अस्तित्व का प्रश्न बना देंगे, बल्कि ट्रेड यूनियन नौकरशाही के असली चरित्र को भी पूरी तरह बेनकाब कर देंगे। यह प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। एक क्रांतिकारी विकल्प केनिर्माण की तैयारी यदि अभी नहीं शुरू की गई और सही लाइन पर, सही ढंग से नहीं शुरू की गई तो फिर यह एक भयानक भूल होगी, एक ऐतिहासिक चूक होगी।

यदि एक सही क्रांतिकारी दिशा में मज़दूर आन्दोलन को आगे बढ़ाने की कोशिश और तैयारी अभी शुरू नहीं की जायेगी, तो आज अलग-अलग, टुकड़ों में बंटा जो मज़दूर वर्ग अपनी अलग-अलग लड़ाइयां एक-एक करके हारता दिखाई दे रहा है, वह कल स्वतः स्फूर्त उभारों में उठ खड़ा होगा, पर अपनी अंतिम परिणति में, उग्र से उग्र स्वतःस्फूर्त संघर्ष भी कहीं नहीं ले जाता।

अतः सर्वोपरि तौर पर, शुरू में ज़रूरी है मज़दूर वर्ग में विचारधारा का प्रचार, क्रांतिकारी राजनीति की शिक्षा और क्रांतिकारी राजनीतिक-सांगठनिक कार्य। नयी शुरुआत यहीं से करनी होगी। ●

एक राजनीतिक सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए, हमेशा ही सबसे पहली आवश्यकता यह होती है कि जनमत तैयार किया जाय, विचारधारात्मक दायरे में काम किया जाये। यह बात क्रान्तिकारी वर्ग के लिए भी लागू होती है और प्रतिक्रान्तिकारी वर्ग के लिए भी। —माओ त्से-तुङ

नारी सभा

इस तरह से चूसती हैं बहुराष्ट्रीय कम्पनियां गरीब मुल्कों की मेहनतकश औरतों का खून-पसीना

देश में नयी आर्थिक नीतियां लागू होने के पहले अधिकतर देशी पूंजीपति ही गरीब मेहनतकश औरतों का खून-पसीना चूसकर मालामाल हो रहे थे। जहां भी सम्भव होता ये पूंजीपति रोजी-रोटी की मारी गरीब औरतों को मजदूर के रूप में रखना ज्यादा पसन्द करते थे। क्योंकि पुरुषों के मुकाबले कम मजदूरी पर ही उन्हें स्त्री मजदूर मिल जाती हैं और राजनीतिक-सामाजिक चेतना के पिछड़े होने के कारण पुरुषों के मुकाबले हड़तालों आदि में भी औरतें कम भाग लेती हैं। लेकिन अब देश के शासकों ने विदेशी जोंको को भी खून चूसने का खुला न्यौता दे दिया है। यानी अब देशी-विदेशी जोंक आपसी भाईचारे के साथ देश की मेहनतकश औरतों का खून चूसकर मोटे होंगे।

देशी-विदेशी लुटेरों के इसी मेलमिलाप को भूण्डलीकरण कहा जा रहा है। यानी, लूट का भूण्डलीकरण। लूट का ताना-बाना अब किसी एक देश के किसी एक फैक्टरी में काम करने वाले मजदूरों तक सीमित नहीं है और न ही लूटने वाला कारखाने का कोई एक मालिक है। हम कह सकते हैं कि पूरी दुनिया का लूट का एक बहुत बड़ा कारखाना है, जिसके मालिक पूरी दुनिया में बिखरे हुए हैं और पूरी दुनिया के मेहनतकशों को लूटकर लूट का माल अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार बांट ले रहे हैं। हम कह सकते हैं कि भूमण्डलीकरण के जमाने में एक भूमण्डलीय कारखाना बन गया है।

इस भूमण्डलीय कारखाने के सबसे बड़े मालिक बड़े साम्राज्यवादी देशों के खरबपति-शंखपति लुटेरे हैं। ये गरीब मुल्कों के छोटे लुटेरों के साथ मिलकर किस तरह मेहनतकश औरतों की मेहनत को निचोड़ रहे हैं इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है।

विभिन्न किस्म के इलेक्ट्रानिक सामान बनाने वाली एक अमेरिकी कम्पनी का उदाहरण लीजिए। इन इलेक्ट्रानिक सामानों के बनाने में सिलिकन धातु के पत्तरों, जिसे सिलिकन चिप कहा जाता है, का इस्तेमाल होता है। इन सिलिकन पत्तरों पर बिजली की सर्किट का निशान बनाने और इसकी जांच-परख का काम केलीफोर्निया में होता है। फिर इन सिलिकन पत्तरों को छोटे-छोटे बारीक टुकड़ों में काटकर उन्हें लकड़ी या प्लास्टिक के बोर्ड पर चिपकाने के लिए एशिया के गरीब मुल्कों में भेज दिया जाता है। इन देशों में ऐसी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से जुड़े बड़े कमीशन एजेण्ट ठेकेदार अपने नेटवर्क के जरिये दूर-दराज के गांवों तक की घरेलू औरतों से माटी का मोल देकर इस काम को कराकर फिर वापस अमेरिका भेज देते हैं, जहां तैयार माल बनकर बाजार में बिक्री के लिए उतारा जाता है।

यदि एशिया के गरीब देशों के कमीशनखोरों-ठेकेदारों की दलाली और माल की ढुलाई का खर्च निकाल दें तो भी अमेरिकी कम्पनी की पांचों उंगली घी में रहती हैं। इसका कारण यह है कि जितनी मजदूरी पर भारत जैसे गरीब देशों की औरतें आठ-दस घंटा काम करेंगी उतनी मज़दूरी में अमेरिका की मजदूर औरत सिर्फ एक घण्टा काम करेगी।

यह एक उदाहरण है भूमण्डलीय कारखाने में गरीब मुल्कों की मेहनतकश औरतों की लूट का। पहले एक कारखाने के शेड के अन्दर जो श्रम-विभाजन था, जो 'एसेम्बली लाइन' थी, उसे अब पूरी दुनिया में फैला दिया गया है। इसे भूमण्डलीय असेम्बली लाइन कहा जा सकता है। इस भूमण्डलीय असेम्बली लाइन में एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका के गरीब मुल्कों में करोड़ों औरतें अपना श्रम बेचने को मजबूर हैं दुनिया के लुटेरे औरतों को अशिक्षा और राजनीतिक-सामाजिक पिछड़ेपन का मक्कारी के साथ भरपूर लाभ उठाते हैं। पुरुष मजदूर की तुलना में वे औरतों को काम पर रखना क्यों पसन्द करते हैं, इसके बारे में ताइवान देश के असेम्बली लाइन पर काम करने वाले एक काइयां मैनेजर के शब्दों में सुनिए

"नौजवान पुरुष मजदूर एक ही तरह के नीरस काम को करने में एक तरह की ऊब दिखाते हैं और अक्सर अपना धीरज खो बैठते हैं। यहां तक कि जब उनका गुस्सा बढ़ जाता है तो वे मशीनों में तोड़-फोड़ करते हैं और फोरमैन को धमकाते तक हैं। लेकिन लड़कियां ज्यादा से ज्यादा हुआ तो रो भर लेती हैं।"

स्त्री मजदूरों की कमजोरियों, मजबूरियों का इस तरह फायदा उठाते हैं धनपशु लुटेरे। इस तरह विशाल भूमण्डलीय कारखाने में औरतें रोटी के दो निवालों के लिए खट रही हैं। लेकिन जिस तरह हर रात की सुबह होती है उसी तरह करोड़ों-करोड़ मेहनतकश औरतों की जिन्दगी की लम्बी काली रात भी एक दिन खत्म होगी ही। औरतें जागेंगी ही। और तब वे गुस्सा आने पर सिर्फ रोयेंगे नहीं। उनका क्रोध प्रचण्ड आग बनकर इस भूमण्डलीय लूट तंत्र को जला डालेगा। भूमण्डलीय 'असेम्बली लाइन' पर काम करते-करते वे यह भी देर-सबेर समझ जायेंगी कि दुनिया भर की मेहनतकश औरतों की मुक्ति की लड़ाई एक ही मजबूत सूत्र से जुड़ी हुई हैं और वे तब दुनिया के मजदूरों एक हो! नारे का असली मर्म भी समझ जायेंगी। भले ही यह मंजिल आज बहुत दूर लग रही हो, लेकिन जब सफर की शुरुआत हो जाती है तो मंजिल भी मिल ही जायेगी।

उठो साथियो! बेबसी के आंसुओं को पोंछ डालो। खुली नजर से इस पिशाच नगरी को देखो। नफरत की ज्वाला भड़काओ। ताकत को बटोरो, संकल्प बांधो और सफर की तैयारी करो। ● मौनाक्षी

ग्रामीण विकास योजनाओं की असलियत

● विश्वनाथ

"भारत गांवों का देश है। यदि आप भारत का दर्शन करना चाहें तो गांवों में जाइये....।" यह बात, जिसे गांधी ने कही थी, आज भी पूरी तरह सच है। आज भी दो-तिहाई से अधिक आबादी गांवों में रहती है। गांधी ने आजाद भारत का सपना "ग्राम-स्वराज्य" के रूप में देखा था। मैं इस विचिकित्सा में नहीं पड़ना चाहता कि गांधी के इस उद्‌गार और गांवों के विकास की उनकी कल्पना में कितनी संगति या विसंगिति थी। मैं कहना यह चाहता हूं कि गांधी ने जो कहा था उसे लेकर अबतक चाहे जितनी भी केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारें बनीं, सबने अदालत में खाये जाने वाली रस्मी सौगंध की भांति गांवों के विकास की रामधुन गायी। बेशक विकास का नाटक भी किया गया, परन्तु जैसाकि महान जर्मन कवि और नाटककार बर्तोल्त ब्रेख्त ने कहा है, नाटक नाटक है, जिन्दगी जिन्दगी। लेकिन ब्रेख्त ने इसी के आगे यह भी कहा है कि किसी भी नाटक में चित्रित जिन्दगी की तुलना सिर्फ जिन्दगी से ही की जानी चाहिए।

लेकिन जब हम भारतीय गांवों की जिन्दगी की तुलना ग्राम विकास योजनाओं के अभिनय से करते हैं तो यही पता चलता है कि इस पूरे नाटक में आम ग्रामीण आदमी की जिन्दगी, बकौल जयशंकर प्रसाद, एक "अधम पात्रमय सा विष्कम्भ" बनाकर छोड़ दी गयी है। आज भी भारी ग्रामीण आबादी, स्वच्छ पेयजल के अभाव, गंदगी, बिजली संकट, कुपोषण, बीमारी आदि तरह-तरह की विषम समस्याओं से ग्रस्त है। अगर वह जी रही है तो जीने के चीमड़पन से ही। बेशक आंसुओं के समन्दर में कहीं-कहीं ऐश्वर्य के टिमटिमाते दीप भी दिखायी दे सकते हैं, पर विकराल सच्चाई तो यही है कि भारी आबादी अभी भी व्यवस्था की उपेक्षा, या अधिक सही कहें तो, उसके अनिवार्य चरित्र का दूषण झेलने के लिए अभिशप्त है।

अधिक नहीं, यदि पिछले पन्द्रह वर्षों की ही तथाकथित ग्रामीण विकास योजनाओं की अमली कार्रवाइयों का जायजा लिया जाये, तो पता चलेगा कि ग्रामीण जनता का एक-एक रेशा निचोड़ कर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों के रूप में ग्रामीण जनता के कल्याण के नाम पर जो भारी रकमें इस तथाकथित लोककल्याणकारी राज्य ने उगाही की, उसका यदि ईमानदारी से एक चौथाई भी खर्च किया गया होता तो गांवों में कुछ सकुन देखने को मिलता। सरकारी आंकड़े बताते हैं कि विगत पन्द्रह वर्षों में विभिन्न ग्रामीण योजनाओं के तहत तेरह हजार करोड़ रुपये खर्च किये गये। इसमें से करीब दस हजार करोड़ रुपए तो 1980-92 की अवधि में ही खर्च हुए। परन्तु नतीजा? वही ढाक के तीन पात। प्रशासन से लेकर योजना अधिकारी और कर्मचारी तो खटमल की तरह इस रकम रूपी जनता का खून पी-पीकर लाल होते गये, और बेशक कुछेक बासर ग्रामीण तत्व भी फायदा उठाये, पर जनता जहां की तहां पड़ी रही।

इस वर्ष विभिन्न ग्रामीण विकास योजनाओं के तहत कुल 1187 करोड़ रुपये का बजट रखा गया है। इसमें से 700 करोड़ रुपये जवाहर रोजगार योजना में चयनित 248 गांवों पर, तथा विशेष अम्बेडकर गांवों पर 30 करोड़ रुपये खर्च करने का लक्ष्य रखा गया है। वैसे तो यह रकम ऊंट के मुंह में जीरा ही है, फिर भी इनके खर्च की कोई सुनियोजित नीति अभी तक नहीं बन पायी है। अम्बेडकर गांवों में स्कूल भवन निर्माण के लिए 19.50 करोड़ रुपये तथा खडंजा नाली के लिए 21 करोड़ रुपये का खर्च अनुमानित है। पर इन मदों में क्रमशः 7 करोड़ व 3.63 करोड़ ही उपलब्ध है। नतीजतन अधिकारी अम्बेडकर गांवों में कटौती किये जाने की मांग कर रहे हैं। गांधी ग्राम विकास का पैसा तो मायावती सरकार ने पहले ही रोक दिया था, सो उस पर खर्च किये जाने का कोई प्रश्न ही नहीं है।

ग्रामीण विकास के लिए अपर्याप्त बजट का आवंटन तो एक विडम्बना है ही, उसमें भी कोढ़ में खाज यह है कि मेड़ें ही खेत चर रही हैं। इस सन्दर्भ में दिवगंत राजीव गांधी की कही हुई एक मार्के की बात का याद आ जाना लाजिमी है। किसी चुनावी जनसभा को सम्बोधित करते हुए उन्होंने एक बार कहा था कि हमारे देश में निर्माण या विकास का जो बजट रखा जाता है उसक तकरीबन 65 प्रतिशत घूसखोरी-कमीशनखोरी जैसे आर्थिक भ्रष्टाचार में बह जाता है, जबकि मात्र 15 प्रतिशत ही ईमानदारी से खर्च हो पाता है। राजीव गांधी ने आगे यह भी कहा था कि यदि उनकी सरकार बनेगी तो वह कोशिश करेंगे कि बजट का कम से कम 30 प्रतिशत ईमानदारी से खर्च हो। उनका यह कथन विकास कार्यों में विराट दानवी रूप ले चुकी भ्रष्टाचार को ही इंगित करता है।

सच तो यह है कि इस चरम प्रतिक्रियावादी एंव जनविरोधी भ्रष्ट तंत्र में सिर्फ मुट्ठी भर राजनीतिबाज, अफसर और उनसे जुड़े धंधाखोर ही 'देश' बन गये हैं और इसीलिए उन्हीं का दिन-दूना रात चौगुना विकास हो रहा है, जबकि विशाल ग्रामीण आबादी और शहरों में रहने वाली विशाल गरीब आबादी) अपने ही देश में बेगाना बन चुकी है। जब देश का भुगतान-संतुलन बिगड़ा तो किसी नेता, किसी मंत्री, किसी अफसर या उनके किसी लग्गू-भग्गू धंधाखोर का आर्थिक संतुलन नहीं गड़बड़ाया, बल्कि इसके ठीक उलट वे तो उसी अनुपात में मालामाल ही हुए। बस इसका सारा कमरतोड़ बोझ विशाल मेहनतकश जनता पर डाल दिया गया। आज जहां मुट्ठी भर लोगों का 'भूमण्डलीकरण' हो रहा है, वहीं इस भारी आबादी का लेबनानीकरण हो रहा है।

यही सच्चाई ग्रामीण विकास योजनाओं की भी है।

"अगर मजदूर काम करना बंद कर दें, तो आपको रोटी और कपड़ा भी मिलना बंद हो जायेगा। और आप उन्हें नीच वर्ग के लोग समझते हैं और उनके सामने आप अपनी संस्कृति का ढोल पीटते हैं अपने को जिन्दा रखने के संघर्ष में उलझे रहने के कारण, उन्हें ज्ञान के जागरण का अवसर नहीं मिला। अब तक उन्होंने मानव बुद्धि द्वारा संचालित मशीनों की तरह एकत्रित, एकरस होकर काम किया है और चतुर, चालाक, शिक्षित लोगों ने उनके काम के फलों का अधिकांश भाग हड़पा है। हर देश में ठीक यही दशा रही है। किन्तु अब जमाना बदल गया है। इस सच्चाई के प्रति निचले वर्ग जाग रहे हैं, और अपने वैध अधिकारों को हासिल करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ होकर वे अपना एक संयुक्त मोर्चा बना रहे हैं। उच्च वर्ग अब कितना ही प्रयत्न क्यों न करे, वह इस निचले वर्ग को कुचल नहीं सकता। उच्च वर्गों का कल्याण अब इसी में है कि वे निचले वर्गों के वैध अधिकारों को हासिल करने में उनकी मदद करें।

मानव समाज पर बारी-बारी से चार जातियों का राज्य होता है — पुरोहितों, सैनिकों, व्यापारियों और मजदूरों का। सबसे आखिर में मजदूरों का राज्य आयेगा। पहली तीन जातियों के शासन के दिन अब लद चुके। अब इस आखिरी वर्ग का समय आया है। उसे शासन मिलना ही चाहिए। कोई इस बात को रोक भी नहीं सकता।"

— विवेकानन्द

हमारा प्रचार क्रांतिकारी है.....

(पृष्ठ 4 का शेष)

के, जो पूंजीवाद के हाथों में खेल रहे हैं, असली चरित्र से परिचित करा दिया जाये। कम्युनिस्टों को इन तथाकथित नेताओं को बेनकाब करने की पुरजोर कोशिश करनी चाहिए और इन पर सर्वाधिक प्रचण्ड तरीके से हमले करने चाहिए।

इन आम्स्टर्डमपंथी नेताओं को सिर्फ पीला कह भर देना किसी भी हालत में काफी नहीं है। लगातार तथा व्यावहारिक उदाहरणों के द्वारा इनके "पीलेपन" को प्रमाणित करना होगा। ट्रेड यूनियनों में लीग ऑफ नेशन्स के अन्तरराष्ट्रीय श्रमिक ब्यूरो में, पूंजीवादी मंत्रिपरिषदों में तथा प्रशासनों में उनकी गतिविधियों में, सम्मेलनों और संसदों में उनके गद्दारी भरे भाषणों में उनके ढेरों प्रेस वक्तव्यों और लिखित संदेशों में झाड़े गये उपदेशों में और सबसे अधिक और (वेतन में बेहद मामूली बढ़ोत्तरी तक के संघर्ष सहित) सभी संघर्षों में उनके ढुलमुलपन और हिचकिचाहट भरे रवैये में हमें लगातार ऐसे अवसर मिल जायेंगे कि सीधे-साधे भाषणों और प्रस्तावों के द्वारा उनके गद्दाराना बर्ताव का पर्दाफाश किया जा सके।

फ्रैक्शनों को अपनी व्यावहारिक हिरावल गतिविधियां सुव्यवस्थित ढंग से संचालित करनी चाहिए। कम्युनिस्टों को ट्रेड यूनियनों के उन छोटे पदाधिकारियों द्वारा किये जाने वाले बहानों को अपने प्रगति अभियान में बाधा नहीं बनने देना चाहिए, जो अपने नेक इरादों के बावजूद सिर्फ अपनी कमजोरी के कारण नियम-कानूनों, यूनियन के फैसलों और अपने वरिष्ठ पदाधिकारियों के निर्देशों की आड़ लिया करते हैं। इसके विपरीत, उन्हें नौकरशाही मशीनरी द्वारा मजदूरों के रास्ते में खड़ी की गई सभी वास्तविक और काल्पनिक बाधाओं को हटाने के मामले में निचले अधिकारियों द्वारा संतोषप्रद कार्य पर जोर देना चाहिए।

फ्रैक्शनों को किस प्रकार काम करना चाहिए

27. ट्रेड यूनियन संगठनों के सम्मेलनों या मीटिंगों में कम्युनिस्टों की भागीदारी के लिए फ्रैक्शनों को सावधानी से तैयारी करनी चाहिए। उदाहरण के तौर पर, उन्हें प्रस्तावों का सविस्तार प्रतिपादन करना चाहिए, वक्ताओं और वकीलों का ठीक-ठीक चुनाव करना चाहिए तथा चुनावों में सक्षम, अनुभवी और ऊर्जावान (चुस्त-दुरुस्त व मेहनती) कामरेडों को खड़ा करना चाहिए।

कम्युनिस्ट संगठन को, अपने फ्रैक्शनों के माध्यम से मजदूरों की सभी मीटिंगों, चुनाव सभाओं, प्रदर्शनों, राजनीतिक उत्सवों और विरोधी संगठनों के ऐसे ही सभी आयोजनों के संबंध में सावधानी के साथ तैयारी करनी चाहिए। जहां भी कम्युनिस्ट, मजदूरों की अपनी मीटिंगें आयोजित करें उन्हें श्रोताओं के बीच पर्याप्त संख्या में ग्रुपों में कम्युनिस्टों को फैला देना चाहिए तथा प्रचार के संतोषजनक परिणाम को सुनिश्चित बनाने के लिए सभी तैयारियां करनी चाहिए।

मजदूरों के सभी संगठनों में काम करो

28. कम्युनिस्टों को यह भी सीखना चाहिए कि असंगठित और पिछड़े हुए मजदूरों को पार्टी कतारों में स्थायी तौर पर कैसे शामिल किया जाये। अपने फ्रैक्शनों की सहायता से हमें मज़दूरों को ट्रेड यूनियनों में शामिल होने और अपनी पार्टी के मुखपत्रों को प्रढ़ने के लिए प्रेरित करना चाहिए। अन्य संगठनों को, जैसे कि शिक्षा समितियों, स्टडी सर्किलों, खेलकूद क्लबों, नाट्य समितियों, सहकारी समितियों, उपभोक्ता संघों या युद्ध पीड़ितों के संघों आदि को अपने (यानी कम्युनिस्ट पार्टी) और मजदूरों के बीच मध्यवर्ती के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। जहां कम्युनिस्ट पार्टी गैर कानूनी ढंग से काम कर रही हो, वहां इस तरह की मजदूर यूनियनें पार्टी के बाहर पार्टी के सदस्यों की पहलकदमी से और नेतृत्वकारी पार्टी कमेटियों की सहमति से और उन्हीं के नियंत्रण में (हमदर्दों की यूनियनें) गठित की जा सकती हैं।

राजनीति के प्रति असम्पृक्त, सर्वहारा वर्ग के बहुतेरे लोगों में दिलचस्पी जगाने और फिर कालान्तर में उन्हें कम्युनिस्ट पार्टी में लाने में कम्युनिस्ट युवा संगठन और नारी संगठन भी लाभदायक हो सकते हैं। यह काम ये संगठन अपने शैक्षिक पाठ्यक्रमों, अध्ययन चक्रों, सैर-सपाटे के कार्यक्रमों, समारोहों और रविवासरीय भ्रमणों आदि के माध्यम से, पर्चों के वितरण के जरिए और पार्टी मुखपत्र की खपत बढ़ाने आदि के द्वारा कर सकते हैं। आम आंदोलनों में भागादारी करके ही मजदूर अपने निम्न पूंजीवादी (यानी मध्यमवर्गीय) रूझानों से मुक्त हो सकेंगे।

निम्न-पूंजीवादी हिस्सों को अपने पक्ष में लाओ

29. क्रान्तिकारी सर्वहारा के हमदर्दों के रूप में मजदूरों के अर्द्धसर्वहारा हिस्सों को अपने पक्ष में लाने के लिए तथा मध्यवर्ती समूहों का सर्वहारा वर्ग के प्रति अविश्वास दूर करने के लिए कम्युनिस्टों को भूस्वामियों, पूंजीपतियों और पूंजीवादी राज्य के साथ उनके विशेष शत्रुतापूर्ण अन्तरविरोधों का इस्तेमाल करना चाहिए। इसके लिए उनके साथ लम्बी बातचीत की, उनकी आवश्यकताओं के प्रति सूझबूझ भरी हमदर्दी की तथा परेशानियों के समय उन्हें मुफ्त सहायता और परामर्श देने की जरूरत पड़ सकती है। इन सबसे कम्युनिस्ट आंदोलन के प्रति उनमें विश्वास पैदा होगा। कम्युनिस्टों को उन विरोधी संगठनों के हानिकारक प्रभावों को समाप्त करने के लिए काम करना चाहिए जो उनके जिलों में वर्चस्वकारी स्थिति में हों या जिनका मेहनतकश किसान आबादी पर घरेलू उद्योगों में काम करने वाले लोगों पर या अन्य अर्द्धसर्वहारा वर्गों पर प्रभाव हो। शोषित गण अपने स्वयं के कड़वे अनुभवों से जिन लोगों को सम्पूर्ण अपराधी पूंजीवादी व्यवस्था का प्रतिनिधि या साक्षात मूर्तरूप समझते हैं, उन लोगों को बेनकाब करना जरूरी है। कम्युनिस्ट आंदोलन (या आंदोलनपरक प्रचार) के दौरान रोजमर्रे की उन सभी घटनाओं का होशियारी के साथ और जोरदार ढंग से इस्तेमाल किया जाना चाहिए जो राज्य नौकरशाही और निम्न पूंजीवादी जनवाद और न्याय के आदर्शों के बीच टकराव की स्थिति उत्पन्न करती हैं।

प्रत्येक स्थानीय ग्रामीण संगठन को अपने जिले के सभी गांवों, वासस्थानों और बिखरी हुई बस्तियों में कम्युनिस्ट प्रचार के प्रसार के लिए घर-घर घूमकर प्रचार करने का काम सावधानीपूर्वक अपने सदस्यों में बांट देना चाहिए।

सशस्त्र सेनाओं में कार्य

30. पूंजीवादी राज्यों की सशस्त्र सेनाओं और नौसेनाओं के बीच प्रचार के तरीके प्रत्येक देश की विशेष परिस्थितियों के अनुकूल होने चाहिए। शान्तिवादी प्रकृति का सैन्यवाद विरोधी आंदोलन (या आंदोलनपरक प्रचार) अत्यन्त हानिकार होता है और सर्वहारा वर्ग के निश्शस्त्र करने के पूंजीपति वर्ग के *प्रयासों की* मदद करता है। सर्वहारा वर्ग, उसूली तौर पर पूंजीपति वर्ग की हर तरह की सामरिक (या सैन्य) संस्थाओं को खारिज करता है और आम तौर पर पूरी ताकत के साथ उनका मुकाबला करता है। लेकिन फिर भी मजदूरों को भविष्य की क्रान्तिकारी लड़ाइयों का सैनिक प्रशिक्षण देने के लिए वह इन संस्थाओं (सेना, राइफल, क्लब, नागरिक सुरक्षा संगठन आदि) का इस्तेमाल करता है। इसलिए घनीभूत राजनीतिक आंदोलन (या आंदोलनपरक प्रचार) की धार नौजवानों और मजदूरों के सैनिक प्रशिक्षण के विरुद्ध नहीं बल्कि सैन्यवादी सत्ता और अफसरों के प्रभुत्व के विरुद्ध केन्द्रित होनी चाहिए। मजदूरों को हथियारों से लैस करने की प्रत्येक संभावना का बड़ी तत्परता के साथ लाभ उठाना चाहिए।

अफसरों की भौतिक रूप से सुविधाजनक स्थितियों, साधारण सैनिकों के प्रति खराब व्यवहार और उनके जीवन की सामाजिक असुरक्षा आदि के रूप में प्रकट होने वाले वर्ग अन्तरविरोधों को सैनिकों के बीच ज्यादा से ज्यादा स्पष्ट किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त आंदोलनपरक प्रचार के जरिए आम सैनिकों के बीच यह तथ्य स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि उनका भविष्य अटूट रूप से शोषित वर्गों की नियति के साथ जुड़ा हुआ है। प्रारम्भिक क्रान्तिकारी उद्वेलन के अपेक्षाकृत उन्नत दौर में साधारण सैनिकों और नौसैनिकों द्वारा अपने अफसरों का जनवादी ढंग से चुनाव करने और सैनिक परिषदों का गठन करने की मांग पूंजीवादी शासन की बुनियाद को कमजोर करने में विशेष लाभदायक सिद्ध हो सकती है।

पूंजीपति वर्ग द्वारा वर्ग युद्ध में इस्तेमाल की जाने वाली चुनिन्दा सैनिक टुकड़ियों और विशेषकर सशस्त्र स्वयंसेवक जत्थों के खिलाफ आंदोलनात्मक प्रचार की कार्रवाई के समय सर्वाधिक सतर्कता और अधिकतम सावधानी बरतने की हमेशा आवश्यकता होती है।

जब भी इन सेनाओं और जत्थों की सामाजिक और भ्रष्ट आचरण के चलते ऐसा अवसर उत्पन्न हो जाये; तो (सेना में) विघटन की स्थिति उत्पन्न करने के लिए आंदोलनात्मक प्रचार के हर अनुकूल क्षण का पूरा उपयोग किया जाना चाहिए। जहां पर भी इसका पूंजीवादी चरित्र एकदम उजागर हो, मिसाल के तौर पर अफसरों की कोर में, वहां पूरी जनता के सामने उसे बेनकाब करना चाहिए तथा उन्हें इतनी अधिक घृणा और सार्वजनिक तिरस्कार का पात्र बना देना चाहिए कि अपने खुद के अलगाव के कारण वे भीतर से ही विघटन के शिकार हो जायें

***"आम्स्टर्डम इण्टरनेशनल" दूसरे इण्टरनेशनल का ही एक और नाम है। यह गद्दार कार्ल काउत्स्की व अन्य की सामाजिक जनवाद की विचारधारा को मानने वाली यूरोपीय पार्टियों का अंतरराष्ट्रीय संघ था जिसने प्रथम महायुद्ध के दौरान विश्व सर्वहारा क्रान्ति के लक्ष्य के साथ गद्दारी करके 'पितृभूमि की रक्षा' का अंधराष्ट्र वादी नारा दिया था और साथ ही राज्य और क्रान्ति विषयक मार्क्सवाद की बुनियादी शिक्षाओं और सर्वहारा अंतरराष्ट्रीयतावाद का परित्याग करके मध्यमार्गी या दक्षिणपंथी अवसरवादी या संशोधनवादी अवस्थिति अपना ली थी। ट्रेड यूनियन आंदोलन में ये कुलीन मजदूरों का व मध्यमवर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे और इनकी यूनियनें महज अर्थवादी संघर्ष और सुधार-समझौते की राजनीति करके सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी चेतना और राजनीतिक संघर्ष की धार भोथरी करके पूंजीपति वर्ग की सेवा किया करती थीं और आज भी कर रही हैं। भारत में भांति-भांति के समाजवादी इन्हीं के वारिस है। खुश्चेव से लेकर देङ सियाओं पिङ मार्का "मार्क्सवाद" को मानने वाली भारत की चुनावबाज संशोधनवादी कम्युनिस्ट पार्टियां भी आज दूसरे इण्टरनेशनल की पार्टियों के ही नक्शेकदम पर चल रही हैं और उनके यूनियन नेताओं का आचरण भी आम्स्टर्डमपंथी नेताओं जैसा ही है। कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल के 'लाल' सर्वहारा चरित्र के समांतर दूसरे इंटरनेशनल के पूंजीवादी चरित्र का नंगा करने के लिए लेनिन उसे "पीला इण्टरनेशनल" भी कहा करते थे।*

(अगले अंकों में जारी)

ऐलान

फावड़ा उठाते हैं हम तो
मिट्टी सोना बन जाती है
हम छेनी और हथौड़े से
कुछ ऐसा जादू करते हैं
पानी बिजली हो जाता है
बिजली से हवा-रोशनी
औ' दूरी पर काबू करते हैं
हमने औजार उठाये तो
इंसान उठा
झुक गये पहाड़
हमारे कदमों के आगे
हमने आजादी की बुनियाद
रखी
हम चाहें तो बंदूक भी उठा
सकते हैं
बंदूक कि जो है
एक और औजार
मगर जिससे तुमने
आजादी छीनी है सबकी
हम नालिश नहीं
फैसला करते हैं।

- गोरख पाण्डेय

डी.एल.डब्ल्यू कारखाना औने-पौने दामों में बेचने की साजिश

(पेज 1 से आगे)

का मजदूर विरोधी पूंजीपरस्त असली शैतानी चेहरा। अगर मजदूरों के हितों की इतनी ही परवाह होती तो यह संस्था संबंधित सरकारों को सिफारिश करती कि वे मजदूरों के काम करने की दशाएं सुधारने के लिए कदम उठायें, न कि निजीकरण की साजिश रचती। दरअसल, अन्तरराष्ट्रीय बाजार पर अपना प्रभुत्व बनाये रखने के लिए साम्राज्यवादी देशों ने इसी प्रकार के नये-नये हथकण्डे ईजाद किये हैं, क्योंकि गैट समझौते पर हस्ताक्षर के बाद अब वे सीधे-सीधे अन्तरराष्ट्रीय बाजार में तीसरी दुनिया के मालों पर रोक नहीं लगा सकते। लेकिन चूंकि उन्हें कान पकड़ना है, सो वे सीधे नहीं तो घुमाकर पकड़ेंगे।

डी.एल. डब्ल्यू. के मजदूरों ने अन्दर की बात का भेद खोलते हुए बताया कि और कई तरीकों से कारखाने को तालाबंदी, निजीकरण, छंटनी की ओर धीरे-धीरे धकेलने का कुचक्र चल रहा है। उनके अनुसार, कई ऐसे कलपुर्जे जो पहले कारखाने में ही बनते थे, उन्हें अब बाहर से ठेके पर बनवाया जा रहा है। इसकी वजह से एक ओर तो अफसर और ठेकेदार कमीशन खा-खाकर निहाल हो रहे हैं, वहीं दूसरी ओर ठेके पर बने मालों की क्वालिटी भी खराब होती है। इससे हो यह रहा है कि घटिया मालों की सप्लाई से लगातार मांग में कमी होती जा रही है। जिन मशीनों पर डी.एल. डब्ल्यू. में पहले ये माल बनते थे, वे खड़ी-खड़ी जंग खा रही हैं और उन पर काम करने वाले मजदूर बेकाम के या तो बैठे रहते हैं या उन्हें किसी दूसरी मशीन पर खानापूरी के लिए लगा दिया गया है। धीरे-धीरे इन मजदूरों को 'सरप्लस' कर छंटनी का रास्ता साफ कर दिया जायेगा।

मजदूर साथियों ने पीड़ा से भरकर बताया कि मजदूरों का धीरे-धीरे गला रेंतकर मारने की तैयारी चल रही है। लेकिन कारखाने में मौजूद कोई भी ट्रेड यूनियन इसके खिलाफ एक शब्द भी नहीं बोल रही है। मजदूरों में अन्दर ही अन्दर गुस्सा उबल रहा है, लेकिन वे अपने आपको बेबस महसूस कर रहे हैं। ●

बोल्शेविकों ने सत्ता पर कब्जा कैसे किया?

(दूसरी किश्त)

लेनिनवादी रणकौशल: तिहरा दुस्साहस और जनता पर भरोसा करना

10-11 अक्तूबर की रात को बोल्शेविक केन्द्रीय कमेटी ने दो के मुकाबले दस मतों से सशस्त्र आम बगावत का पथ प्रशस्त कर दिया। केन्द्रीय कमेटी ने यह निर्णय उस समय लिया जब सामाजिक ढांचा तेजी के साथ टूट-फूट रहा था। करेन्स्की जलसेना की टुकड़ियों को पेत्रोग्राद से हट जाने का आदेश दे चुका था। इससे लोगों को यह आशंका हुई कि वह पेत्रोग्राद को जर्मनों को सौंप देने और उन्हें क्रान्तिकारी आंदोलन को कुचलने का जिम्मा देने की योजना बना रहा है।

लोगों ने इसका माकूल प्रतिरोध किया। गैरिसन की यूनिटों ने यह घोषणा की कि वे पेत्रोग्राद को खाली करने के किसी भी आदेश का पालन नहीं करेंगे और सोवियतों ने मेन्शेविक तथा समाजवादी क्रान्तिकारी नेताओं के विरोध के बावजूद गैरिसन समिति के पक्ष में वोट दिया। इससे भी आगे बढ़कर सोवियतों ने "क्रान्तिकारी प्रतिरक्षा समिति" के गठन का प्रस्ताव रखा। प्रकट रूप से समिति का उद्देश्य जर्मन हमले का प्रतिरोध करना था लेकिन यह करेन्स्की सरकार के किसी भावी विश्वासघात का मुकाबला भी करने को तैयार थी। गैरिसन और सोवियतें अब सरकार के खिलाफ लगभग खुली बगावत को उतारू थीं। लेकिन यह रुख बहुत अधिक समय तक नहीं टिक सकता था और हथियारों के दम पर अन्ततः कुचल दिया जाना ही इसकी नियति थी।

इन सबका यह मतलब नहीं था कि बोल्शेविक आम बगावत की सफलता के प्रति सौ फीसदी आश्वस्त थे। अभी भी कई महत्वपूर्ण समस्याओं को बिना देरी किये सुलझाना बाकी था।

पहला, आम बगावत के लिए सैन्य तैयारियां काफी अपूर्ण थीं। यद्यपि जनसमुदाय ने जुलाई में हथियारों के साथ प्रदर्शन किया था (और लड़ाई लड़ी थी) और अगस्त में कार्निलोव के खिलाफ पेत्रोग्राद की सुरक्षा की थी, लेकिन आम बगावत की सुरक्षा की थी, लेकिन आम बगावत के लिए इन सबके साथ एक अलग स्तर की तैयारियों की जरूरत थी। इसका तात्पर्य सत्ता पर कब्जा करने के लिए एक आक्रामक रणनीति विकसित करना, प्रहार करने के लिए सेनाओं की ब्यूह रचना तैयार करना, लक्ष्य निर्धारित करना और हमलों के बीच तालमेल बैठाना आदि था। इसका तात्पर्य यह था कि जनता को एक सेना की तरह काम करने के लिए, युद्ध शुरू करने के लिए और आक्रामक प्रहार करने के लिए सांगठनिक रूप से ढाला जाये। यह शहर की सशस्त्र सुरक्षा की तुलना में गुणात्मक रूप से उच्चतर मंजिल थी -- यह सबसे ऊंची छलांग थी। और इसे अमली जामा पहनाने के लिए पार्टी को आक्रमण की शुरुआत और जनता पर भरोसा करना

इस पूरे दौर में लेनिन का नेतृत्व अत्यन्त महत्वपूर्ण था। उन्होंने दो मुख्य चीजों पर सर्वाधिक जोर दिया। पहला, बोल्शेविक और अधिक अनुकूल परिस्थितियों का इंतजार नहीं कर सकते। उन्हें आक्रमण के लिए जनता को तैयार करने के लिए तत्काल सक्रिय हो जाना होगा। दूसरा, और सब चीजों के साथ-साथ उन्हें सशस्त्र सर्वहारा पर अनिवार्य रूप से अपनी निर्भरता कायम करनी होगी। आम बगावत के कुछ ही दिनों पूर्व लिखते हुए लेनिन ने मार्क्स के दृढ़ मत को रेखांकित किया कि आम बगावत एक कला है, कोई स्वतः स्फूर्त घटना नहीं। उन्होंने इस कला के नियमों को इस रूप में व्याख्यायित किया।

1. आम बगावत के साथ कभी खिलवाड़ मत करो, बल्कि इसके शुरू होने के साथ ही यह अच्छी तरह अहसास कर लेना चाहिए कि निरन्तर आगे ही बढ़ते ही जाना है।

2. निर्णायक ठिकानों और निर्णायक घड़ियों में अपनी सर्वश्रेष्ठ सेनाओं को केन्द्रित करो, वरना शत्रु, जो बेहतर तैयारी और संगठन से बेहतर स्थिति में है, विद्रोहियों को नष्ट कर डालेगा।

3. आम बगावत शुरू हो जाने के बाद अनिवार्य रूप से दृढ़तम इच्छाशक्ति के साथ काम करना चाहिए और हर सम्भव तरीकों से बिना किसी हीलाहवाली के आक्रमण करना चाहिए। "सुरक्षात्मक रुख हर सशस्त्र उभार के लिए मौत के समान है।"

4. दुश्मन पर अनिवार्य रूप से अचानक धावा बोलना चाहिए और जब उसकी सेनाएं बिखरी हुई हों उस क्षण का भरपूर फायदा उठाना चाहिए।

5. प्रतिदिन की सफलताओं के लिए जान लड़ा देनी चाहिए चाहे वे कितनी ही छोटी क्यों न हों (नगरों में चल रही लड़ाई में प्रति घंटे की सफलता का महत्व होता है), और हर कीमत पर "नैतिक वरीयता" हासिल करनी चाहिए।

मार्क्स ने सशस्त्र उभारों के सम्बन्ध में सभी क्रान्तियों की शिक्षाओं का समाहार इन शब्दों में किया : अब तक ज्ञात क्रान्तिकारी नीति में महानतम नीति है : दुस्साहस, दुस्साहस और अधिक दुस्साहस।

इस तरह के रणकौशलात्मक दुस्साहस की कुंजी क्या है? जनता की संगठित ताकत! लेनिन लिखते हैं :

"सभी महत्वपूर्ण ठिकानों को अपने कब्जे में करने के लिए और सभी महत्वपूर्ण कार्रवाइयों में हर जगह शामिल रहने के लिए सर्वाधिक दृढ़निश्चयी तत्वों (हमारे "धुरंधर दस्ते", नौजवान मजदूर और साथ ही साथ सबसे अच्छे मल्लाहों) को अनिवार्य रूप से छोटी टुकड़ियों में संगठित करना चाहिए, उदाहरण के लिए : पेत्रोग्राद की घेरेबंदी और उसे अलग-थलग करने के लिए, मल्लाहों, मजदूरों और सैनिक टुकड़ियों के संयुक्त हमले द्वारा इस पर कब्जा करने के लिए -- तिहरे दुस्साहस की दरकार होती है; अर्थात दुश्मन के "केन्द्रों" (अफसरों के स्कूलों, तारघरों, टेलीफोन एक्सचेन्जों आदि) पर हमले व घेराबंदी करने लिए सबसे अच्छे मजदूरों के बीच से टुकड़ियों का गठन करने और उन्हें राइफलों और बमों से हथियारबंद करने की दरकार होती है। अनिवार्य रूप से इन टुकड़ियों का सूत्रवाक्य यह होना चाहिए : "दुश्मन को भाग जाने देने से बेहतर है किसी के हाथों मारा जाना!" (लेनिन की संकलित रचनाएं, खण्ड 26, पृ. 180-81)

इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए बिना दम मारे दौड़ लगाने की जरूरत थी। लेनिन की कार्यदिशा अब तक की कार्रवाइयों से एक निर्णायक विच्छेद -- एक अज्ञात और अभूतपूर्व परिणाम की दिशा में छलांग की मांग करती थी। इसका मतलब था कि अब तक जो कुछ जीता गया था उसे जोखिम में डाल दिया जाये। लेकिन सिर्फ इसी लाइन और दिशा के सहारे सब कुछ जीता जा सकता था।

इसी बीच घटनाओं का प्रवाह मशीनगन की रफ्तार से जारी है। आम बगावत का विरोध करने वाले बोल्शेविक नेताओं -- कामेनेव एवं जिनोवियेव[3] के सार्वजनिक पत्रों से उत्साहित होकर स्थायी सरकार ने 19 अक्टूबर को आम बगावत को नाकाम करने की ठोस तैयारियां शुरू कर दीं। मशीनगनों से लैस बख्तरबंद कारों ने शीत प्रासाद (सरकारी मुख्यालय) के सामने पोजीशन ले ली। शहर की सड़कों पर कैडेटों की गश्त तेज हो गयी। सरकार ने बैरकों में विचार करने वाले प्रचारकों की गिरफ्तारी का आदेश जारी कर दिया। फौज के सर्वोच्च मुखियाओं ने उस रात राजधानी को विशेष जिलों में बांट दिया और सोवियत मुख्यालय स्मोल्नी संस्थान सहित सभी मुख्य ठिकानों पर छापे मारने और कब्जा करने की योजनाएं बनायीं।

लाल रक्षक

लेकिन न तो लेनिन हाथ पर हाथ धरे बैठे थे और न ही जनता। क्रान्ति के शुरुआती दिनों से ही जनता ने खुद को लाल रक्षकों -- सर्वहाराओं के संगठन जो अपने कारखानों और अड़ोस-पड़ोस में आत्मरक्षा सम्बन्धी और पुलिस की कुछ जिम्मेदारियां निभा रहे थे -- के रूप में लगातार संगठित होना शुरू कर दिया था। अक्तूबर में बोल्शेविकों ने इन लाल रक्षकों को सर्वहारा की सेना की रीढ़ के रूप में परिवर्तित करने की दिशा में कदम उठाया। उन्होंने अपना सबसे मजबूत आधार विबोर्ग जिले (जिसके आस-पास सर्वहारा की भारी आबादी थी) को बनाया।

21 अक्तूबर को होने वाले जबर्दस्त क्रान्तिकारी प्रदर्शन को ध्यान में रखते हुए, विबोर्ग जिला लाल रक्षक इकाई ने कुछ कारखाना इकाइयों को पूरी तरह मुस्तैद रहने का हुक्म दिया। 23 तारीख को विबोर्ग लाल रक्षक स्टाफ ने सभी इकाइयों को लड़ाई के लिए पूरी तरह तैयार रहने और कारखानों में टिके रहने के गुप्त आदेश जारी किये। लाल रक्षक दल के बारे में लिखी गयी एक किताब में निम्नलिखित अंश मिलता है : "वल्कन कारखाने का एक मजदूर, एफ.ए. बुगारोव ने लिखा था कि, 'सोवियत के दिन' (सोवियतों के समर्थन में आहूत 21 अक्तूबर का प्रदर्शन) के बाद मजदूरों का मिजाज उत्तेजित हो गया था।... लाल रक्षक स्टाफ की ओर से लाल रक्षकों को लड़ाई के लिए तैयार रहने का आदेश प्राप्त हुआ। राइफलें भर ली गईं। कारखाने के यार्ड में खड़ी ट्रकों को उन्होंने बख्तरबंद गाड़ियों में बदल दिया और उसमें मशीनगनों को फिट कर दिया। कारखाना अब कारखाना न रहकर फौजी शिविर बन गया था।"

एक अन्य मजदूर उन दिनों को याद करते हुए कहता है कि क्रान्तिपूर्व आखिरी दिनों में कुछ सशस्त्र मजदूर घर नहीं जाते थे बल्कि अपनी बन्दूकों के साथ वे वहीं सो जाते थे, जिससे कारखाने का जलपान गृह बैरकों में तब्दील हो गया था। दरअसल, भारी तादाद में विबोर्ग के प्लाण्टों को लाल रक्षकों ने बैरकों में बदल दिया था। सशस्त्र मजदूरों के संगठन को एक सेना के रूप में गुणात्मक रूप से छलांग लगाने की दिशा में यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम था।

सैन्य टुकड़ियों को जीतना

लेनिन लाल रक्षक इकाइयों के रूप में संगठित सर्वहाराओं की जमात पर सर्वाधिक भरोसा करते थे, लेकिन वे यह भी चाहते थे कि बगावत के पूर्व अधिक से अधिक सरकारी सैन्य टुकड़ियों को या तो अपने पक्ष में कर लिया जाये या उन्हे तटस्थ बना दिया जाये।

बोल्शेविकों ने पहले विश्व युद्ध के शुरुआती दिनों से ही सेना के टुकड़ियों को राजनीतिक रूप से संगठित किया था। यह बेहद खतरनाक भूमिगत कार्य था। इसमें रूसी सिपाहियों और विरोधी साम्राज्यवादी ताकतों की ओर से लड़ रहे सिपाहियों के बीच भाई चारा कायम करने, सेना के बहुसंख्यक सिपाहियों (किसानों) के असली वर्ग हितों को उजागर करने के लिए प्रचार करने, सिपाहियों पर लक्षित बोल्शेविक अखबारों का वितरण करने और जहां भी सम्भव हो बोल्शेविक सेलों को विकसित करने का काम शामिल था। सरकार ने सिविलियन बोल्शेविक संगठनकर्ताओं को मोर्चों पर भेजकर दण्डित किया। लेकिन इससे अक्सर **'मिंया की जूती मिंया के सिर'** जैसी स्थिति पैदा हो जाया करती थी, क्योंकि मोर्चों पर भेजे गये बोल्शेविक युद्ध के अग्रिम मोर्चों पर भी नये क्रान्तिकारियों को संगठित करने लगते थे।

युद्ध के आगे बढ़ने पर रूसी सेनाओं को करारी हार का सामना करना पड़ा। धीरे-धीरे यह एकीकृत और अनुशासित लड़ाकू सेना बिखरने लगी। यह स्थिति फरवरी क्रान्ति के दौरान और बाद में उस समय तेजी से छलांग लगाकर आगे बढ़ी जब पूरे समाज में मची राजनीतिक उथल-पुथल ने खुद सेना को भी अपनी चपेट में ले लिया। उसके बाद से जहां अस्थायी सरकार ने सेना में अनुशासन बहाल करने और उन्हें फिर से जर्मनों के खिलाफ लड़ने के लिए काफी जद्दोजहद की, वहीं, बोल्शेविकों ने सरकार और बहुसंख्यक सिपाहियों के बीच की खाई को और चौड़ा बनाने तथा क्रान्ति के लिए समर्थन जुटाने में कोई कोर-कसर न छोड़ी।

आम बगावत के नजदीक आने के साथ ही सेना की टुकड़ियों के बीच प्रचार और संगठन का काम बेहद महत्वपूर्ण बन गया। अक्तूबर की शुरुआत में पेत्रोग्राद सोवियत ने सर्वहारा सेनाओं के लिए कमान केन्द्र की जिम्मेदारी निभाने के लिए सैन्य क्रान्तिकारी समिति का गठन किया। 21 अक्तूबर से सै.क्रा. स. ने गैरिसन यूनिटों के लिए कमिसारों को भेजना शुरू कर दिया। इन कमिसारों ने सेना की टुकड़ियों का आह्वान किया कि वे उन्हीं आदेशों का पालन करें जिन्हें सैन्य क्रान्तिकारी समिति ने अनुमोदित किया हो। इसने सरकारी सैन्य कमान के लिए लिए सीधी चुनौती उपस्थिति कर दी। इस तरह की पहलकदमी उभार के समय कम से कम कुछ तटस्थ टुकड़ियों को अपने पक्ष में करने में मदद कर सकती थी; यद्यपि यह सरकार की वफादार और विश्वसनीय टुकड़ियों को जनता और उनके नेताओं के खिलाफ शुरुआती हमला करने से नहीं रोक सकती थी।

बैरकों में बावेला उठ खड़ा हुआ और मुसल्सल चलने वाले वाद-विवादों व नोंक-झोंक ने लगभग हर इकाई में वहां पहुंचने वाले कमिसारों का स्वागत किया। जैसे-जैसे इन कमिसारों/प्रचारकों की मांग बढ़ती गयी, सैन्य क्रान्तिकारी समिति ने जो भी मिला -- सोवियतों की कांग्रेस के लिए समय से पहले पहुंचने वाले लोगों, जेल से तुरन्त छूटे बोल्शेविक काडरों और क्रान्तिकारी आम सिपाहियों -- सबको बैरकों में भेज दिया। टुकड़ियों के बीच उठ खड़ा हुआ यह राजनीतिक संघर्ष अपने आप में सरकारी सेनाओं को युद्ध में सैन्य रूप से पराजित करने की जगह नहीं ले सकता था। लेकिन इसने इतना अवश्य किया कि सरकारी सेनाओं के कुछ गैर भरोसेमंद सिपाहियों को भावी बोल्शेविक आंदोलन का हमदर्द बना दिया और वास्तव में इसने बोल्शेविकों के पक्ष से आम बगावत में भाग लेने के लिए कुछ प्रमुख इकाइयों को जीत लिया।

टिप्पणियां

कामेनेव और जिनोवियेव ने एक गैर-पार्टी अखबार में "अपनी पार्टी द्वारा निकट भविष्य में किसी भी तरह के सशस्त्र प्रदर्शन को शुरू करने" के किसी भी विचार के खिलाफ दलील देते हुए लिखा -- इसका साफ-साफ यह अर्थ निकलता था कि बोल्शेविक बगावत शुरू करने वाले हैं। इस विश्वासघात ने सरकार को दमन-चक्र चलाने का बहाना मुहैया करा दिया। लेनिन ने बगावत को टालने की उनकी दलीलों का जवाब "कामरेडों के नाम पत्र" के द्वारा दिया जिसे जान रीड ने "राजनीतिक प्रचार का एक ऐसा सर्वाधिक दुस्साहसपूर्ण नमूना बताया 'जैसा दुनिया ने पहले कभी नहीं देखा था।" लेनिन के पत्र ने दर्जनों कोणों से कामेनेव और जिनोवियेव के दलीलों -- जिनका पार्टी में काफी असर बना हुआ था -- को ध्वस्त कर दिया और इस प्रक्रिया में आम बगावत को दिशा निर्देश देने वाली राजनीतिक व फौजी सोच की जड़ों को गहराई तक स्थापित कर दिया।

(अगले अंक में जारी)

स्वत्वाधिकारी **डा. दूधनाथ** द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वानी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : **कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।**
सम्पादक : **डा. दूधनाथ।** सम्पादकीय पता : द्वारा, **ओ. पी. सिन्हा, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ -- 226 007** सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।